दी। पता चला, तब राजा शर्याति च्यवन के पास पहुंचे और क्षमा मांगने लगे। च्यवन ने कहा–जिसने मेरी आंख फोड़ी है वह कन्या मेरी पत्नी बने, तब मैं अपना क्रोध दूर करूंगा। राजा ने तुरंत अपनी पुत्री उनको दे दी। च्यवन प्रसन्न हो गये और उन्होंने राजा तथा उनकी सेना की टट्टी–पेशाब खोल दी। वे सब भी प्रसन्न होकर अपने घर चले गये।

दूसरा खतरा आया। च्यवन की पत्नी सुकन्या स्नान करके कपड़ा पहन रही थी। अश्विनीकुमार आ गये। वे उसे देखकर मोह गये। उन दोनों ने कहा–तुम हम में से किसी एक की पत्नी बन जाओ। तुम इस बूढ़े च्यवन के चक्कर में क्यों पड़ी हो? सुकन्या ने च्यवन के प्रति अपनी श्रद्धा बतायी, तब अश्विनीकुमारों ने कहा–हम देवताओं के वैद्य हैं। हम तुम्हारे पति को सुंदर जवान बना देंगे। फिर हम तीनों में से जिसको चाहना उसको पति बना लेना। च्यवन के राजी होने पर अश्विनीकुमारों ने उनसे कहा कि तुम इस सरोवर में प्रवेश करो। च्यवन सरोवर में डुबकी लगाते ही सुंदर जवान बन गये। सुकन्या ने च्यवन को पुनः वरण किया। च्यवन ने अश्विनीकुमारों को मुंहमांगा आशीर्वाद दिया। अश्विनीकुमार भी प्रसन्न होकर देवलोक चले गये।

च्यवन के सुंदर जवान हो जाने से शर्याति दोनों प्राणी बहुत प्रसन्न हुए। च्यवन ने राजा से कहा कि एक बड़ा यज्ञ करो। यज्ञ हुआ। इंद्र आये। अश्विनी कुमार भी आये। च्यवन ने अश्विनीकुमारों को सोमरस अर्पित करना चाहा, तो इंद्र नाखुश हो गये। उन्होंने कहा–अश्विनीकुमार वैद्य का काम करते हुए इधर–उधर घूमने वाले हैं। अतएव यज्ञ में ये सोम पाने के अधिकारी नहीं हैं। परंतु च्यवन ने उनसे सुंदर जवानी पायी थी। वह उनके उपकार का बदला देना चाहते थे। इंद्र ने कहा–च्यवन! खबरदार, यदि तुम सोमरस के प्याले अश्विनीकुमारों की तरफ ले के चले तो मैं तुम्हारे ऊपर तुरंत **वज्र** चला दूंगा और तुम नष्ट हो जाओगे। परंतु च्यवन मानने वाले कहां थे! वे सोमरस अश्विनीकुमारों को अर्पित करने के लिए चल पड़े। इंद्र ने च्यवन को मारने के लिए हाथ में **वज्र** सम्हाल लिया तो च्यवन ने उनका हाथ वहीं रोक दिया। अब इंद्र का हाथ हिलता–डुलता नहीं था। च्यवन ने केवल इतना ही नहीं किया। उन्होंने तुरंत कृत्या उत्पन्न कर दी। कृत्या के शरीर का वर्णन न देवता कर सकते थे और न दैत्य। फिर भी हम उसका वर्णन तो करेंगे ही। उसका नीचे का ओठ धरती पर टिका था और ऊपर का ओठ स्वर्ग लोक पहुंच गया था। उसकी चार दाढ़ें सौ–सौ योजन तक फैली थीं। उसके दूसरे दांत दस–दस योजन लंबे थे। उसकी दोनों भुजाएं पर्वत के समान थीं और उनकी लंबाई दस–दस हजार योजन थी।

उसके दोनों नेत्र चंद्रमा और सूरज के समान थे। उसका मुख प्रलय-काल की अग्नि के समान था। उसकी लपलपाती जीभ बिजली के समान चमकती थी। वह इंद्र को खाने के लिए दौड़ी।

इंद्र बेचारे की तो होलिया टाइट हो गयी। वे भय से अपने ओठ चाटने लगे। इंद्र ने थर-थर कांपते हुए च्यवन से कहा-महाराज! अश्विनीकुमार यज्ञ में सोमपान के अधिकारी होंगे। आप मुझ पर प्रसन्न हों। अतएव च्यवन ने कृत्या को शांत कर दिया और मदिरा को मद्यपान, व्यभिचार, जुआ और शिकार में बांट दिया। इस प्रकार मद को हटाकर सब को सोमरस पिलाया। फिर सब मामला खत्म हुआ और च्यवन अपनी पत्नी के साथ प्रसन्न होकर रहने लगे।

लोमश ने कहा-युधिष्ठिर! यह जो पक्षियों से गूंजता हुआ सरोवर है च्यवन का ही है। तुम सब इसमें स्नान करो। यहां सब पापों का नाश होता है। (अध्याय -)।

मीमांसा

ऋग्वेद में च्यवन का वर्णन है। वे वृद्ध और बलहीन थे। अश्विनी कुमारों ने उन्हें जवानी और शक्ति दी थी। इसको ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों तथा महाभारत में नाना प्रकार अतिरंजित करके लेखकों ने रखा है। ऊपर का सारा वर्णन बच्चों की कहानी बनकर रह गया है। शर्याति राजा के चार हजार पत्नियां होना, च्यवन के तप के समय उनकी देह पर दीमक की बांबी चढ़ना, शर्याति तथा उनके सैनिकों की टट्टी-पेशाब बंद कर देना, काल्पनिक कृत्या का भयानक रूप, इंद्र का हाथ स्तंभित कर देना, च्यवन का सरोवर में नहाते ही सुंदर जवान हो जाना-सब अतिशयोक्ति या असंभव दोष से युक्त है। युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा में हैं। लोमश उन्हें जहां-तहां स्नान करके पाप काटने की आज्ञा देते हैं, जिससे पीछे वाले लोग तीर्थों में स्नान कर अपने पाप काट सकें।

. मांधाता की विचित्र उत्पत्ति और प्रभुत्व

युधिष्ठिर ने लोमश से प्रसिद्ध राजा मांधाता के विषय में पूछा। लोमश ने बताया-इक्ष्वाकुवंश में युवनाश्व नाम के प्रसिद्ध राजा हुए हैं। उन्होंने एक हजार अश्वमेध यज्ञ किया, परंतु उनको कोई संतान नहीं हुई। अतएव वन में तपस्या करने लगे। एक रात को बड़ी जोरों से प्यास लगी, तो पास के च्यवन मुनि के आश्रम में घुस गये। वहां एक घड़ा जल रखा था। उससे उन्होंने जल पीया और

शेष जल को गिरा दिया। जब च्यवन मुनि जागे तो देखा घड़ा जल से खाली है। उन्होंने अन्य लोगों से पूछा कि यह किसका कर्म है। युवनाश्व ने आगे आकर बताया कि मैंने इसका जल पीया है। च्यवन ने कहा कि यह तुमने अच्छा नहीं किया। मैंने कठिन तपस्या करके संस्कार–संपन्न जल भरा था कि इसको पीकर तुम्हें बलवान पुत्र पैदा होगा, जो इंद्र को भी मारकर यमलोक पहुंचा सकेगा। खैर, अब तुम्हारे पेट में गर्भ बढ़ेगा, परंतु तुम्हें उसका कष्ट नहीं होगा।

गर्भ धारण के सौ वर्ष बीत जाने पर युवनाश्व की बायीं कोख फाड़कर एक पुत्र पैदा हुआ जो सूर्य के समान तेजस्वी था। राजा स्वस्थ ही रहा। जच्चा–बच्चा दोनों स्वस्थ! स्वर्गलोक से इंद्र बालक को देखने आये। देवताओं ने पूछा कि बालक क्या पीयेगा? इंद्र ने अपनी तर्जनी अंगुली बालक के मुख में डाल दी और कहा– *'माम् अयम् धाता'* अर्थात यह मुझे ही पीयेगा। इस प्रकार इंद्र ने उस बालक का नाम मांधाता रखा। इंद्र द्वारा बच्चे को तर्जनी पिलाते ही बच्चा साढ़े छह हाथ बढ़ गया।

मांधाता बड़ा होकर राज्य किया और सारी पृथ्वी उसकी हो गयी। स्वर्ग में इंद्र का आधा सिंहासन उसका हो गया। उसने बहुत यज्ञ किया। सारी पृथ्वी उसके यज्ञ के चैत्यों से भर गयी। मांधाता ने दस हजार पद्म गायों का दान ब्राह्मणों को किया। उन्होंने स्वयं पानी बरसा लिया। इंद्र टगर–टगर ताकते रह गये– *'मिषतो वज्रपाणिनः* (वन. ,)। मांधाता ने चंद्रवंशी गांधारराज को बाणों से घायल करके मार डाला। युधिष्ठिर! यह जो कुरुक्षेत्र में यज्ञ का स्थान है, मांधाता का ही है। इसका दर्शन करो। महाराज मांधाता की भांति तुम भी पृथ्वी पर राज्य करके स्वर्ग प्राप्त कर लोगे (अध्याय)।

मीमांसा

पानी पीने से युवनाश्व को गर्भ रह गया और सौ वर्ष बाद उनकी बायीं कोख फाड़कर पुत्र पैदा हुआ, यह क्या प्रकृति संगत है? क्या पानी पीने से गर्भ टिकता है, वह भी पुरुष को और सौ वर्ष तक? पंडितों ने ऐसी असंभव बातें लिखकर अज्ञान ही बढ़ाया है। क्या कोई अपने जीवन में हजार अश्वमेध यज्ञ कर सकता है? मांधाता इंद्र की तर्जनी पीकर साढ़े छह हाथ तुरंत बढ़ गये, दस हजार पद्म गायों का दान किया, सब असंभव कथन। मांधाता या कोई मनुष्य पानी नहीं बरसा सकता। इंद्र नाम का देवता भी पानी नहीं बरसाता है, अपितु जड़–प्रकृति की योग्यता से वर्षा होती है। च्यवन ने युवनाश्व से कहा कि तुम्हें बलवान पुत्र पैदा होगा, जो इंद्र को मार सके। बल का महत्त्व दूसरे को मारने में

नहीं है, सेवा करने में है, दुखियों को दुख से बचाने में है।

. राजा सोमक की कथा

राजा सोमक थे। उनकी सौ पत्नियां थीं। किसी से संतान नहीं हुई। बहुत दिन बाद किसी एक पत्नी से एक बच्चा पैदा हुआ। उसका नाम रखा गया 'जंतु'। एक दिन बच्चा जंतु की कमर में एक चींटी ने काट लिया। इससे सारी स्त्रियां उसे घेरकर जोर-जोर से रोने लगीं। राजा सोमक मंत्रि-सभा में बैठे थे। वहां तक रानियों के रोने की आवाज गयी। राजा ने जब समझा तब उसने कहा कि एक पुत्र होने की अपेक्षा पुत्रहीन रहना अच्छा है। मेरे एक पुत्र हुआ जिसका नाम जंतु है। वह चींटी के काटने से घायल है। अंत में पुरोहित ने कहा कि तुम्हारी सभी पत्नियों से पुत्र हो सकते हैं। जब जंतु को मारकर उसका हवन किया जायगा तब उसकी गंध सूंघकर तुम्हारी सब पत्नियां गर्भवती हो जायंगी। राजा राजी हो गये। पुरोहित ने रानियों से जंतु को छीनकर मार डाला और उसकी चर्बी का हवन किया। हवन की गंध सूंघकर सब रानियां गर्भवती हो गयीं और सबको पुत्र पैदा हुए। जंतु भी अपनी माता के पेट से पैदा हुआ। उसकी बायीं पसली में सुनहला चिह्न था।

कुछ दिनों के बाद सोमक राजा और उनके पुरोहित परलोकवासी हो गये। पुरोहित जंतु की हत्या के पाप से नरक में गये और राजा सोमक स्वर्ग में। राजा ने धर्मराज से कहा कि हमारे पुरोहित को नरक से निकाल दीजिए, मैं उनके बदले में नरक का दुख भोग लूंगा। धर्मराज ने कहा कि एक का कर्म-फल दूसरा नहीं भोगता है। सब जीव अपने-अपने ही कर्म-फल भोगते हैं। लोमश ने कहा–युधिष्ठिर ! यह आश्रम राजा सोमक का ही है। जो मनुष्य क्षमाशील होकर यहां छह दिन निवास करता है, वह उत्तम गति पाता है (अध्याय -)।

मीमांसा

पौराणिक पंडित बिना असंभव बात लिखे संतुष्ट नहीं होता। बच्चे की हत्या करके उसको हवन में डालकर उसकी गंध से नारियों का गर्भवती होना क्रूर और असंभव कथन से भरा है। मनुष्य के मांस की गंध गर्भ का कारण नहीं होता है, अपितु पुरुष का वीर्य होता है। पुरोहित को नरक में जाना ही था, क्योंकि उन्होंने बच्चे की हत्या की थी।

. इंद्र और अग्नि द्वारा राजा उशीनर की परीक्षा

कुरु क्षेत्र के द्वारभूत तीर्थ, प्लक्षप्रस्रवण नामक यमुना तीर्थ, सरस्वती तीर्थ आदि अनेक तीर्थों को दिखाते हुए लोमश युधिष्ठिर को लेकर चल रहे थे। उसी दरम्यान में राजा उशीनर की बात आयी। लोमश ने कहा–इंद्र और अग्नि दोनों ने राजा उशीनर की परीक्षा लेनी चाही। इंद्र बाज पक्षी बन गये और अग्नि कबूतर। कबूतर बाज के डर से भागकर राजा उशीनर के यज्ञ–मंडप में घुस गया। बाज ने राजा से अपना आहार मांगा। राजा ने कहा–शरण में आये हुए की रक्षा करना मेरा धर्म है। बाज ने कहा–मैं भूखा हूं। कबूतर मेरा आहार है; अतएव आपका धर्म दूसरे धर्म का बाधक है। "हे सत्य विक्रम! जो धर्म दूसरे धर्म का बाधक हो वह धर्म नहीं, अधर्म है। जो दूसरे किसी धर्म का विरोध न करता हो, वही असली धर्म है।"

राजा उशीनर ने कहा कि तुम इस मेरी शरण में आये हुए कबूतर को छोड़ दो, मैं तुम्हें उसके बदले में सूअर, हिरन तथा भैंसा का मांस दे सकता हूं। बाज ने कहा कि मैं कबूतर के बदले में आपका मांस चाहूंगा। राजा तराजू के एक पलड़े पर कबूतर को बैठा दिया और दूसरे पलड़े में अपने अंगों का मांस काट–काट कर रखता गया। कबूतर भारी पड़ता गया तो राजा उशीनर स्वयं तराजू पर चढ़ गये।

बाज ने कहा–राजन! मैं इंद्र हूं और कबूतर अग्नि देव हैं। हम दोनों आपकी परीक्षा लेने आये थे। आप उत्तीर्ण हुए। इंद्र और अग्नि राजा को आशीर्वाद देकर चले गये। लोमश ने कहा–युधिष्ठिर! यह आश्रम राजा उशीनर का है। यहां दर्शन करने से सारे पाप छूट जाते हैं (अध्याय –)।

मीमांसा

यह कथा उशीनर के त्याग की महिमा में है। इंद्र, अग्नि आदि वैदिक प्राकृतिक देवता हैं, जड़ हैं। वे बाज तथा कबूतर नहीं बन सकते। बाज और कबूतर मानुषी भाषा नहीं बोल सकते। अतएव कहानी काल्पनिक है। उशीनर ने अपना अंग भी नहीं काटा होगा, क्योंकि उनका मांस बाज पक्षी मांग नहीं सकता। इसका अर्थ इतना ही है कि जितना बन सके शरणागत की रक्षा करे

. **धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।**
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम वन० ,

और उसके लिए अपने जीवन में त्याग रखे। इसमें यह श्लोक अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम

जो धर्म दूसरे धर्म का बाधक हो वह धर्म नहीं है, अपितु कुधर्म है। हे सत्य बली! जो धर्म निर्विरोध हो, वह धर्म है।

. अष्टावक्र और बंदी का जनक-सभा में शास्त्रार्थ

लोमश ने कहा–युधिष्ठिर! उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु थे जो मंत्रवेत्ता थे। उद्दालक के शिष्य कहोड़ थे जो गुरु-आज्ञाकारी तथा अध्ययनशील थे। उन्होंने अपने परिश्रम और गुरुकृपा से शीघ्र ही वेद-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। कहोड़ को योग्य समझकर उद्दालक ने अपनी पुत्री सुजाता का उसके साथ विवाह कर दिया। कुछ समय बाद सुजाता गर्भवती हुई। गर्भस्थ बच्चा तेजस्वी था। कहोड़ वेद-पाठ बहुत करते थे। एक दिन कहोड़ के वेद-पाठ पर टिप्पणी करते हुए गर्भस्थ शिशु ने उन्हें टोका और कहा–पिता जी! आप रात भर वेद-पाठ करते हैं, परंतु आपका वेद-पाठ शुद्ध नहीं रहता। कहोड़ को बच्चे की बात बुरी लगी। वे शिष्यों के बीच में बैठे अपना अपमान सह नहीं सके और गर्भस्थ शिशु को शाप दिया–अरे, तू मां के पेट में रहते हुए ऐसा टेढ़ा बोलता है, तू आठों अंगों से टेढ़ा हो जा। अतः बच्चा आठों अंगों से टेढ़ा होकर जन्मा। इसलिए वह अष्टावक्र कहलाया। श्वेतकेतु उद्दालक के पुत्र होने से वे अष्टावक्र के मामा थे, परंतु अवस्था में अष्टावक्र के समान थे।

जब अष्टावक्र माता के गर्भ में थे, तब की बात है। सुजाता ने कहोड़ से कहा था कि घर निर्धन है। बच्चा पैदा होगा, तो उसकी सेवा में खर्च लगेगा, इसलिए कहीं से धन का प्रबंध करो। कहोड़ धन के लिए राजा जनक की सभा में गये। राजा जनक की सभा में धुरंधर शास्त्रार्थी बंदी नाम का था। उसने कहोड़ को शास्त्रार्थ में हरा दिया। उसका नियम था कि वह जिसको हरा देता था, उसको पानी में डुबा देता था। कहोड़ को भी पानी में डुबा दिया। इस बात का पता उद्दालक को लग गया। उन्होंने अपनी पुत्री सुजाता से कहा–बेटी! तेरा

. **घुटना, हाथ, पांव, छाती, सिर, वचन, दृष्टि और बुद्धि–अष्टांग है।**

पति शास्त्रार्थ में हार जाने के कारण पानी में डुबा दिया गया है। इस बात को अपने बच्चे से कभी न कहना। इसलिए सुजाता इस बात को अष्टावक्र से छिपा कर रखती थी। अष्टावक्र अपने नाना उद्दालक को पितातुल्य तथा श्वेतकेतु मामा को भाई तुल्य समझते थे।

जब अष्टावक्र की उम्र बारह वर्ष की हुई, वे एक दिन अपने नाना की गोद में बैठे थे। श्वेतकेतु आये और अष्टावक्र का हाथ पकड़कर बाहर खींच दिये और कहे यह तुम्हारे बाप की गोद नहीं है, और खुद गोद में बैठ गये। इससे अष्टावक्र को बड़ा दुख हुआ। उसने माता सुजाता से पूछा कि मेरा पिता कहां है? माता बच्चे की उक्त बात सुनकर बहुत पीड़ित हुई, किंतु उसे बताना पड़ा। स्थिति जानकर अष्टावक्र ने श्वेतकेतु से कहा–हम दोनों राजा जनक के यज्ञ में चलें। सुना जाता है उनके यज्ञ में बड़े आश्चर्य की बातें देखने में आती हैं। हम दोनों वहां विद्वानों के शास्त्रार्थ सुनेंगे, खूब चोख–चटकार खाने को भी मिलेगा। वहां हमारी जानकारी तथा प्रवचनशक्ति भी बढ़ेगी और वेदध्वनि भी सुनने को मिलेगी। फलतः मामा–भांजे दोनों जनकपुर के लिए चल दिये।

जब ये दोनों यज्ञ–मंडप के पास पहुंचे, तब संयोग से राजा जनक यज्ञ–मंडप में ही जा रहे थे, अतएव रास्ते में मिल गये। राजा के सेवकों ने इन दोनों को रास्ता से हटने के लिए कहा। अष्टावक्र ने कहा–राजन! अंधे, बहरे, स्त्री, बोझा ढोने वाले तथा राजा का मार्ग छोड़ देना चाहिए; किंतु यदि ब्राह्मण आगे आया हो, तो उसका मार्ग पहले छोड़ देना चाहिए। राजा जनक ने कहा–ब्रह्मन! मैंने तुम्हारे लिए मार्ग छोड़ दिया। आग कभी छोटी नहीं होती। इंद्र भी ब्राह्मण के सामने नतमस्तक रहते हैं।

राजा तो यज्ञ–मंडप में चले गये। अष्टावक्र और श्वेतकेतु को द्वारपाल ने रोक लिया। अष्टावक्र क्रुद्ध हो गये। द्वारपाल ने कहा–ब्राह्मण कुमार! सुनिए, हम विद्वान पंडित बंदी के आज्ञापालक हैं। इस यज्ञशाला में बालक–ब्राह्मण प्रवेश नहीं पाते हैं। अष्टावक्र ने कहा–यदि यहां वृद्ध ब्राह्मणों के लिए द्वार खुला है तो हमारे लिए भी खुला होना चाहिए; क्योंकि हम ब्रह्मचारी और वेदज्ञ हैं। साथ ही, हम गुरु–सेवक, जितेंद्रिय तथा शास्त्र–ज्ञान से संपन्न हैं। केवल उम्र में कम होने के कारण हमारा अपमान नहीं होना चाहिए। द्वारपाल ने कहा–ब्राह्मणो! तुम वेदों का सुंदर उच्चारण करो, परंतु अपने को बालक समझो। अपने मुख से अपनी प्रशंसा क्यों करते हो? जगत में ज्ञानी दुर्लभ हैं। अष्टावक्र ने कहा–केवल शरीर बढ़ जाने से कोई बड़ा नहीं होता। सेमल का पेड़ बड़ा होने पर भी उसके फूल–फल सारहीन होते हैं। यदि छोटा और पतला पेड़ मिष्ट

रस से भरा फलदार है, तो उसी की विशेषता है। द्वारपाल ने कहा–बालक बड़े-बूढ़ों से ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। समय पर बालक भी बूढ़े होते हैं। थोड़े समय में ज्ञान का पा जाना असंभव है। तुम बालक होकर भी बूढ़े के समान क्यों बात करते हो? अष्टावक्र ने कहा–बाल पक जाने से कोई वृद्ध नहीं होता, ज्ञान-वृद्ध होने से बालक भी वृद्ध होता है। बड़ी उम्र, उजले बाल तथा धन-परिवार के बहुत बढ़ जाने से कोई बड़ा नहीं होता, अपितु ब्राह्मण अंगों सहित वेदों का विद्वान होने से बड़ा होता है। द्वारपाल! मैं बंदी से मिलने आया हूं। तुम यह संदेश राजा जनक को दे दो। तुम आज मुझे विद्वानों से शास्त्रार्थ करते देखोगे और बंदी को परास्त हुआ पाओगे। राजा और सभासद आज मेरी लघुता और श्रेष्ठता को देखें। द्वारपाल ने कहा–जहां प्रवीण विद्वानों का प्रवेश होता है वहां तुम जैसे दस वर्ष के बालक का प्रवेश कैसे होगा? परंतु, मैं तुम लोगों को प्रवेश कराने का प्रयत्न करूंगा और तुम लोग भी प्रयत्न करो।

द्वारपाल को भी लगा होगा कि यह कोई करारा विद्वान आ गया है। उसने उन दोनों को सभा में प्रवेश कराया। अष्टावक्र अपने मामा श्वेतकेतु के साथ यज्ञ-मंडप में पहुंच गये। सभा में पहुंचकर अष्टावक्र ने राजा जनक से कहा–राजन! वर्तमान में आप ही यज्ञ कर्म में श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान सम्राट हैं। मैंने सुना है कि आपकी सभा में कोई बंदी नाम का विद्वान है जो अन्य विद्वानों को शास्त्रार्थ में हराकर आप ही के विश्वसनीय मनुष्यों द्वारा हारे हुए विद्वानों को जल में डुबवाकर मरवा देता है। मैं बंदी से मिलकर उनसे शास्त्रार्थ करने आया हूं। मैं उनको उसी प्रकार निस्तेज कर दूंगा जिस प्रकार सूरज ताराओं के प्रकाश को विलुप्त कर देता है। जनक ने कहा–ब्राह्मण कुमार! तुम अपने विपक्षी की प्रवचन-शक्ति जाने बिना बंदी को जीतने की इच्छा रखते हो। जो बंदी की शक्ति को न जानते हों वे ही ऐसा कह सकते हैं। अनेक वेद-विद्वान बंदी से परास्त हो चुके हैं। तुम बंदी के विषय में कुछ नहीं जानते हो, तभी छोटे मुंह बड़ी बात करते हो। बंदी के सामने जो विद्वान पड़ा वह हताश हुआ। कितने ही ज्ञानोन्मत्त बंदी को जीतने के लिए घोषणा करके आये हैं, परंतु वे बंदी के सामने हतप्रभ हो गये हैं। वे तिरस्कृत होकर चुपचाप राजसभा से निकल गये हैं, फिर वे बोल भी नहीं पाये हैं।

अष्टावक्र ने कहा–राजन! अभी बंदी को हम-जैसे लोगों से सामना नहीं पड़ा है, इसलिए वह सिंह बनकर निडर बात करता है। आज जब मुझसे सामना होगा तब वह पराजित होकर वैसे ही मुरदे की तरह हो जायगा, जैसे रास्ते में टूटी हुई गाड़ी।

जनक–जो मनुष्य तीस अवयव, बारह अंश, चौबीस पर्व और तीन सौ साठ अरों वाले पदार्थ को जानता है और उसके प्रयोजन को समझता है, वह उच्च कोटि का ज्ञानी है।

अष्टावक्र–जिसमें बारह अमावस्या और बारह पूर्णमासी ये चौबीस पर्व, ऋतु रूप छह नाभि, महीने रूप बारह अंश और दिन रूप तीन सौ साठ अरे हैं, वह निरंतर घूमने वाला संवत्सर रूप कालचक्र आपकी रक्षा करे।

जनक–जो दो घोड़ियों की भांति जुड़ी रहती हैं, और जो बाज पक्षी की तरह जोर से गिरने वाली हैं, उन दोनों के गर्भ को देवताओं में से कौन धारण करता है? वे दोनों किस गर्भ को पैदा करती हैं?

अष्टावक्र–राजन! ये दोनों तुम्हारे दुश्मन के घर पर भी कभी न गिरें। वायु जिसका सारथि है, वह मेघ रूप देव इन दोनों के गर्भ को धारण करते हैं और ये दोनों उस मेघ रूप गर्भ को पैदा करते हैं।

जनक–सोते समय कौन आंखें बंद नहीं करता, जन्म लेने के बाद किसमें हलचल नहीं होती, बिना हृदय के कौन होता है और कौन वेग से बढ़ता है?

अष्टावक्र–मछली सोते समय आंखें नहीं मूंदती, अंडा पैदा होने पर हल-चल नहीं करता, पत्थर के हृदय नहीं होता और नदी वेग से बढ़ती है।

जनक ने कहा–ब्रह्मन! आपका बल देवतुल्य है। मैं आपको मनुष्य नहीं मानता, आप बालक नहीं वृद्ध हैं। वाद-विवाद में आप सर्वोच्च हैं। ये सामने बंदी हैं जिनसे आप शास्त्रार्थ करना चाहते हैं।

अष्टावक्र ने कहा–मैं बंदी को नहीं पहचानता हूं। यदि पहचान लूं तो मैं उन्हें पकड़ लूं। इतने में बंदी सामने आ गया, तो तुरंत अष्टावक्र ने कहा–अपने को बड़ा प्रवक्ता मानने वाले बंदी! तुमने पराजित हुए पंडितों को पानी में डुबवा देने का नियम बना रखा है, परंतु आज मेरे सामने तुम्हारी बोलती बंद हो जायगी। बैठो मेरे सामने स्थिर होकर।

बंदी ने कहा–मुझ सोते हुए सिंह को मत जगाओ। मुझे विषैला सर्प समझो। जब तक तुम मेरे द्वारा डस नहीं लिए जाते हो तब तक तुम्हारा छुटकारा नहीं है। यदि कोई पर्वत पर अपना हाथ मारे तो उसका हाथ ही टूटेगा, पर्वत का कुछ नहीं बिगड़ेगा।

. **यह विद्युत-शक्ति है जो पॉजेटिव और निगेटिव दोहरी शक्तियों से बनती है।**

अष्टावक्र ने कहा–मेरे प्रश्न का तुम उत्तर दो और तुम्हारे प्रश्न का मैं उत्तर दूंगा।

बंदी–एक ही अग्नि भांति-भांति से प्रकाशित होती है; एक ही सूर्य सारे संसार को उजाला देता है; वीर एक इंद्र है और पितरों का स्वामी एक यमराज है।

अष्टावक्र–दो मित्रों का साथ विचरने के समान इंद्र और अग्नि हैं; पर्वत और नारद हैं; अश्विनीकुमार हैं; रथ के दो पहिए हैं और पति-पत्नी हैं।

बंदी–प्रजा तीन हैं–देवता, मनुष्य और मानवेतर प्राणी; वेद तीन हैं–ऋक्, यजु और साम; यज्ञ तीन हैं–प्रातः सवन (यज्ञ); मध्याह्न सवन और सायं सवन; लोक तीन हैं–स्वर्ग, मृत्यु और नरक; ज्योतियां तीन हैं–सूर्य, चंद्र और अग्नि।

अष्टावक्र–आश्रम चार हैं–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास; वर्ण चार हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; दिशाएं चार हैं–पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण; वर्ण चार हैं–ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और हल्; वाणी चार हैं–परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी।

बंदी–यज्ञ की अग्नियां पांच हैं–गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य; पंक्ति छंद भी पांच पदों से बनता है। (आठ-आठ अक्षर के पांच पदों से पंक्ति छंद बनता है); यज्ञ पांच हैं–देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, ऋषि यज्ञ, भूत यज्ञ और मनुष्य यज्ञ; ज्ञान इंद्रियां पांच हैं–आंख, नाक, कान, जीभ और चाम; ऐसी अप्सराएं होती हैं जिनकी पांच चोटियां होती हैं। (अनुशासन पर्व, अध्याय); पांच नदियों–विपासा (व्यास), इरावती (रावी); वितस्ता (झेलम), चंद्रभागा (चिनाब) और शतुद्र (सतलज) का देश पंचनद (पंजाब) है।

अष्टावक्र–अग्नि स्थापना के समय छह गायें दान देना चाहिए; छह ऋतुएं–वसंत, गीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर, संवत्सर रूप कालचक्र की सिद्धि करती हैं; इंद्रियां छह हैं–पांच ज्ञानेंद्रिय, छठा मन; कृत्तिकाएं छह हैं और वेदों में साद्यस्क नामक यज्ञ भी छह हैं।

बंदी–ग्राम्य पशु सात हैं–गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, घोड़ा, कुत्ता और गधा; जंगली पशु भी सात हैं–सिंह, बाघ, भेड़िया, हाथी, वानर, भालू और मृग; वेद के प्रमुख सात छंद हैं–गायत्री, उष्णिक, (अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती; ऋषि सात हैं–मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा और वसिष्ठ;

पूजा के उपचार सात हैं–गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन और तांबूल; वीणा के तार भी सात हैं।

अष्टावक्र–तराजू में लगी सन की डोरियां आठ होती हैं; सिंह को मार गिराने वाले शरभ के आठ पैर होते हैं; वसुओं की संख्या आठ हैं–धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास और सभी यज्ञों के रूप आठ कोण के होते हैं।

बंदी–पितृयज्ञ में समिधानी ऋचाएं नौ होती हैं; सृष्टि के कारण नौ हैं–प्रकृति, पुरुष, महतत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध; बृहती छंद के प्रत्येक चरण में नौ अक्षर होते है और एक से नौ तक ही अंक होते हैं।

अष्टावक्र–दिशाएं दश हैं–पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नैर्ऋती (दक्षिण-पश्चिम कोण), वायव्य (पश्चिम-उत्तर कोण), ईशान (उत्तर-पूर्व कोण), आग्नेय (दक्षिण-पूर्व कोण), अर्ध (नीचे), उर्ध्व (ऊपर); दस सौ मिलकर एक सहस्र होता है; स्त्रियां दस महीने तक ही गर्भ धारण करती हैं, निंदक दस होते हैं–रोगी, दरिद्र, शोकार्त, राजदंडित, शठ, खल, वृत्ति से वंचित, उन्मत्त, ईर्ष्यालु और कामी; शरीर की अवस्थाएं दस हैं–गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार, पौगंड (बालोचित), कैशोर, यौवन, प्रौढ़, वार्द्धक्य और मृत्यु; पूजनीय पुरुष दस होते हैं–पिता, अध्यापक, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, नाना, श्वसुर, दादा, बड़ी अवस्था वाले कुटुंबी, और पितृव्य (चाचा-ताऊ)।

बंदी–प्राणधारी जीवों के ग्यारह इंद्रिय हैं–हाथ, पैर, मुख, गुदा, उपस्थ, आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, और मन; इनके क्रमशः ग्यारह विषय हैं–पकड़ना, चलना, बोलना, मलत्याग, मूत्रत्याग, देखना, सुनना, सूंघना, चखना, छूना और सोचना; यज्ञ में ग्यारह यूप होते हैं; मनुष्य के मन के विकार ग्यारह हैं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, हर्ष, शोक, राग, द्वेष और अहंकार; रुद्र भी ग्यारह होते हैं–हर, बहुरूप, अंबक, अपराजित, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, वृषाकपि, शंभु, शर्व और कपाली।

अष्टावक्र–एक संवत्सर (वर्ष) में बारह महीने होते हैं; जगती छंद का हर पाद बारह अक्षरों का होता है; प्राकृत यज्ञ बारह दिनों का माना गया है; आदित्य भी बारह हैं–धाता, मित्र, अर्यमा, इंद्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। (वस्तुतः ये बारहों नाम आदित्य (सूर्य) के हैं।)

. **शरभ आख्यायिकाओं में वर्णित है।**

एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋग्वेद , ,)। अर्थात एक ही सत् (आदित्य) को बहुत नामों से कहते हैं)।

बन्दी–त्रयोदशी तिथि उत्तम कही जाती है और यह पृथ्वी तेरह द्वीपों वाली है।

उक्त बात कहकर बंदी से कुछ कहते नहीं बना, अतएव चुप हो गया, तो अष्टावक्र ने उसकी बात की पूर्ति स्वयं कर दी–

अष्टावक्र–विष्णु ने केशी नामक दानव से तेरह दिनों तक युद्ध किया था। वेदों के अतिशब्दविशिष्ट छंद बताये गये हैं उनके एक-एक पाद तेरह आदि अक्षरों से बताये गये हैं (अर्थात अति जगती छंद का एक पाद तेरह अक्षरों का, अतिशक्करी का एक पाद पंद्रह अक्षरों का, अत्यष्टि का प्रत्येक पाद सत्रह अक्षरों का तथा अति धृति का हर एक पाद उन्नीस अक्षरों का होता है)।

उक्त बातें सुनकर *'तूष्णींभूतं सूतपुत्रम्'*–सूत-पुत्र बंदी मौन हो गया और मुंह नीचाकर चिंता में पड़ गया। इधर अष्टावक्र बोलते ही रहे। सभा में हल्ला होने लगा। विद्वान लोग अष्टावक्र के सामने नतमस्तक हो गये।

अष्टावक्र ने राजा जनक से कहा–राजन! इस बंदी ने पहले अनेक ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्त कर उन्हें जल में डुबवा दिया है। अब इसकी भी वही दशा होना चाहिए। अतएव इसे पकड़कर जल में डुबा दिया जाय।

बंदी ने जनक से कहा–महाराज! मैं वरुण का पुत्र हूं। वे अपने वरुण लोक में बारह वर्ष चलने वाला यज्ञ कर रहे हैं। वहां विद्वान ब्राह्मणों की आवश्यकता थी, अतएव मैंने पानी में डुबाने के बहाने उन ब्राह्मणों को वरुण लोक भेज दिया है। वहां यज्ञ पूरा हो गया है; अतएव वे डुबाये गये ब्राह्मण वहां से लौटकर आ रहे हैं। मैं पूजनीय अष्टावक्र जी का सम्मान करता हूं जिनके द्वारा मैं जल में डुबाया जाकर वरुण लोक जाऊंगा और पिता श्री वरुण का दर्शन करूंगा।

अष्टावक्र ने जनक से कहा–बंदी ने अपनी वाचाली से ब्राह्मणों को जल में डुबाया है; परंतु सभा में बैठे हुए सभी विद्वान देख लिए होंगे कि मैंने बंदी की वाक-शक्ति को किस प्रकार उखाड़ फेंका है। बड़े लोग बालक के वचन को सुनकर उसमें से सत्य ले लेते हैं; अतएव तुम्हें भी मेरे वचनों को सुनकर उनको ग्रहण करना चाहिए। राजन! लगता है कि तुमने लसोड़े के पत्ते पर भोजन कर लिया है अथवा उसका फल खा लिया है। इसी से तुम्हारा तेज क्षीण हो गया है अथवा बंदी द्वारा तुम्हारी स्तुति ने तुम्हें मोह में डाल रखा है। इसीलिए अंकुश

की मार खाकर भी मतवाला हाथी जैसे रास्ते पर नहीं आता, वैसे तुम मेरी बातों पर ध्यान नहीं दे रहे हो।

जनक ने कहा–ब्रह्मन! मैं आपकी दिव्य वाणी सुन रहा हूं। आपने बंदी को जीत लिया है। आपकी इच्छा अभी पूरी कर दी जायगी। देखिए, यह आपके द्वारा जीता गया बंदी खड़ा है।

अष्टावक्र–राजन! इस बंदी को जीवित रहने का अधिकार नहीं है। यदि इसके पिता वरुण देव हैं, तो इसे शीघ्र जल में डुबाकर इसके पिता के पास भेज दें।

बंदी–राजन! मैं सचमुच वरुण का पुत्र हूं। अतएव मुझे अपने जल में डुबाये जाने का कोई भय नहीं है। अष्टावक्र अपने डुबाये गये पिता को अभी देखेंगे।

तत्काल पहले के जल में डुबाये गये ब्राह्मण वरुण द्वारा पूजित होकर राजा जनक के पास प्रकट हो गये।

अष्टावक्र के पिता कहोड़ भी प्रकट हो गये। उन्होंने जनक से कहा–राजन! लोग इसीलिए अच्छे पुत्र पाने के लिए अभिलाषा करते हैं। जो काम मैं नहीं कर सका वह मेरे पुत्र ने कर दिखाया। कभी-कभी निर्बल, मूर्ख और अज्ञानी पिता के भी बलवान, पंडित और ज्ञानी पुत्र पैदा होते हैं।

बंदी राजा जनक की आज्ञा लेकर स्वयं जल में डूब गया। इधर अष्टावक्र ने अपने पिता की पूजा की और सभा के द्वारा वे स्वयं पूजित होकर अपने पिता कहोड़ और मामा श्वेतकेतु के साथ अपने आश्रम पर चले आये।

कहोड़ ने अपने पुत्र अष्टावक्र को उसकी माता के सामने कहा–तुम इस समंगा नदी में स्नान करो। अष्टावक्र जैसे नदी में डुबकी लगाये, तुरंत उनके सभी अंग सीधे हो गये।

लोमश ने युधिष्ठिर से कहा–राजन! इसी से समंगा नदी पुण्यमयी हो गयी। इसमें स्नान करने वाला मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। तुम भी अपनी पत्नी तथा भाइयों के साथ इसमें प्रवेश करो (अध्याय –)।

मीमांसा

गर्भ का बच्चा अपने पिता के अशुद्ध वेद-पाठ को सुने और समझे तथा उसे टोके, तथा पिता गर्भस्थ पुत्र से चिढ़कर उसे शाप दे और इससे उसके अंग टेढ़े हो जायं; ये सारी बातें प्रकृति-विरुद्ध हैं। अतएव असत्य हैं।

उद्दालक का आश्रम दिल्ली के पूर्व पांचाल देश में था, और जनक की राजधानी उत्तर बिहार तथा आज के नेपाल की तराई-क्षेत्र में था। कहोड़ का धन के लिए इतनी दूर जाना अस्वाभाविक लगता है। जनक जैसे ज्ञानी जहां बैठे हों वहां वाद-विवाद में हारा हुआ विद्वान पानी में डुबाया जाकर मार डाला जाय, यह बेतुकी बात है। महा झूठी बात तो यह है कि बंदी वरुण का पुत्र था। वह हारे हुए विद्वानों को पानी में डुबाकर उन्हें वरुण लोक भेजता था और डुबाये गये ब्राह्मण पुनः वहां से आ गये। समंगा नदी में नहाने से अष्टावक्र के अंग सीधे हो गये, यह असत्य कथन है। चाहे जिस नदी में कोई नहाये, जैसे अंग होंगे वैसे ही रहेंगे।

खास बात है कि समंगा नदी को पाप काटने वाली बनाकर उसमें पांडवों को नहलाना है। ध्यान रहे, कोई नदी मनुष्य के पाप को नहीं काट सकती। पाप-कर्म छोड़ने से पाप कटता है। वेद में वरुण नैतिकता का देवता है, परंतु पौराणिक कहानियों में उसे जल का देवता बना दिया गया है। सारे देवता मनुष्य के द्वारा बनाये खिलौने हैं। मनुष्य देवताओं को बनाता-बिगाड़ता रहता है। उसे चाहिए कि वह अपने महत्त्व को समझे।

अष्टावक्र और बंदी का कथोपकथन कोई तत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ नहीं है, अपितु एक, दो, तीन से लेकर तेरह तक की संख्याओं का अनमेल वर्णन है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस प्रसंग में "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा।" कहावत लिखकर अच्छी चुटकी ली है। बीच में बंदी को सूतपुत्र कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि सूतपुत्र भी विद्वान होने पर राजा जनक की ब्रह्मसभा में उच्च आसन पाता था जो विद्वान ब्राह्मणों को परास्त करता था।

. लक्ष्य पाने के लिए सही रास्ता अपनाना पड़ेगा

युधिष्ठिर गंगा तथा कनखल पर्वतमालाओं के पास पहुंचे, फिर भृगुतुंग पर्वत पर उष्णीगंग में स्नान किये। लोमश ने कहा–यहां अहंकार और क्रोध त्यागकर शांत भाव से रहो। आगे एक कहानी आती है–भरद्वाज और रैभ्य ये दो मित्र थे। वे दोनों पास-पास अपने-अपने आश्रम में परस्पर प्रेम से रहते थे। रैभ्य के दो पुत्र थे–अर्वावसु और परावसु; और भरद्वाज के एक पुत्र था–यवक्रीत। रैभ्य और उनके दोनों पुत्र उच्चतर विद्वान थे, परंतु भरद्वाज तपस्वी थे, विद्वान नहीं थे। यवक्रीत ने देखा कि मेरे पिता का उतना आदर नहीं होता है

जितना रैभ्य और उनके पुत्रों का होता है। यवक्रीत बहुत दुखी हुए। वे क्रोध में आकर तपस्या करने लगे। उनके तपस्या करने का उद्देश्य था कि उन्हें वेदों का ज्ञान हो जाय।

उनकी तपस्या से प्रभावित होकर उनके पास इंद्र आये। उन्होंने यवक्रीत से कहा–किसलिए तपस्या करते हो? यवक्रीत ने कहा–गुरुमुख से पढ़ने पर बहुत दिनों में वेदों का ज्ञान होता है। मैं तपस्या से उसे तुरंत पाना चाहता हूं। इंद्र ने कहा–वेदज्ञान के लिए तपस्या नहीं, गुरुभक्तिपूर्वक गुरुमुख से पढ़ना उसका रास्ता है। अतः जाओ, गुरु के मुख से अध्ययन करो।

यवक्रीत ने इंद्र की बात नहीं मानी। वे पुनः तपस्या करने लगे। अबकी बार इंद्र एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप धारणकर गंगा की रेत में आये जहां यवक्रीत स्नान करने जाते थे। बूढ़ा ब्राह्मण मुट्ठी में बालू लेता और गंगा में डालता। ऐसा वह बराबर करता था। यवक्रीत ने कहा–यह क्या करते हो? बूढ़े ने कहा–पुल बनाता हूं जिससे मनुष्य, पशु आदि आराम से गंगा पार जा सकें। यवक्रीत ने कहा–इससे कहीं पुल बनेगा? इंद्र ने कहा–इसी प्रकार तपस्या से वेद-ज्ञान नहीं होता। इसके लिए गुरुमुख से वेदाध्ययन करना पड़ेगा।

यवक्रीत ने कहा–यदि तपस्या से वेद विद्या नहीं आती है, तो हे इंद्र! आप मुझे वर दीजिए जिसमें मैं और मेरे पिता दोनों वेदों के विद्वान होकर सबसे अधिक बढ़े-चढ़े हो जायं।

इंद्र ने वर दे दिया–यवक्रीत! तुम्हें और तुम्हारे पिता को वेदों का पूरा ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। साथ ही अन्य कामनाएं भी पूरी हो जायंगी। अतएव तुम तपस्या छोड़कर अपने आश्रम पर जाओ।

यवक्रीत अपने आश्रम पर आया और पिता से कहा कि मैंने इंद्र से वर पा लिया है, इससे मैं और आप वेदों के विद्वान हो जायेंगे और दूसरों से हम बढ़-चढ़ कर हो जायेंगे। पिता भरद्वाज ने कहा–तुम इस घमंड में नष्ट हो जाओगे। उन्होंने एक अहंकारी की कहानी भी सुनायी कि वह अपने अहंकार से नष्ट हो गया था, वैसे तुम्हारी दशा न हो जाय, इसलिए तुम्हें सावधान करता हूं। मेरे मित्र रैभ्य मुनि तथा उनके दोनों पुत्र-अर्वावसु और परावसु बहुत शक्तिशाली हैं। उनकी तरफ मत जाना। उनसे छेड़खानी मत करना। परंतु यवक्रीत घमंड में पड़कर वही किया जिससे उसको दुख मिला।

देवता ने भी यवक्रीत से कहा–रैभ्य तथा उनके पुत्रों ने परिश्रम से कष्ट उठाकर गुरुमुख से वेद-विद्या प्राप्त किया है, अतएव तुम उनसे बढ़कर नहीं हो सकते।

लोमश ने कहा–उन्हीं प्रतापवान रैभ्य मुनि का यह आश्रम है। यहां एक रात निवास करने से युधिष्ठिर! तुम सब पापों से मुक्त हो जाओगे (अध्याय -)।

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"इसकी पृष्ठभूमि में इंद्र और भरद्वाज का वह वैदिक उपाख्यान था, जो तैत्तिरीय ब्राह्मण में पाया जाता है। वहां भरद्वाज ऋषि वैदिक ज्ञान के लिए तप करते हैं। इंद्र ने उनसे पूछा–हे भरद्वाज! यदि तुम्हें इसी प्रकार एक जन्म और मिले तो क्या करोगे? भरद्वाज ने कहा–मैं वेदों के संपूर्ण ज्ञान के लिए इसी प्रकार तप करुंगा।

इंद्र ने पूछा–यदि एक जन्म और मिले तो क्या करोगे? भरद्वाज ने कहा–मैं इसी प्रकार वेदार्थ-ज्ञान के लिए तप करूंगा। तब उनके सामने तीन पर्वत प्रकट हुए। इंद्र ने उनमें से एक-एक मुट्ठी भरकर कहा–हे भरद्वाज! इन पर्वतों को देखते हो? तुम जितना ज्ञान पाओगे, वह इन मुट्ठियों के बराबर है। वेद तो अनंत हैं– *'अनन्ता वै वेदाः।*

"यह प्राचीन वैदिक कहानी सार्थक है। वैदिकज्ञान या सृष्टिज्ञान सचमुच अनंत है। मनुष्य के मस्तिष्क में उसका जो अंश आ सकता है, वह अपेक्षाकृत इतना अल्प है, जितनी पर्वत की तुलना में एक मुट्ठी धूल। अर्वाचीन दार्शनिक 'मॉरिस मेटरलिक' ने अज्ञेय तत्त्व की दुर्धर्षता से स्तब्ध होकर इसी से मिलता-जुलता उद्‌गार प्रकट किया है–'इस विश्व के एक परमाणु का भी संपूर्ण ज्ञान किसी को हो सकेगा, इसमें संदेह है। मैं अपने शत्रु के लिए भी यह न चाहूंगा कि वह ऐसे जगत में रहने के लिए बाध्य हो, जिसके एक परमाणु का भी पूरा ज्ञान किसी ने जान लिया हो।"

लोमश हर जगह आश्रम और तीर्थ की महिमा बताकर युधिष्ठिर को पापों से छूटने का रास्ता बताते हैं। पाप तो पापकर्म छोड़ने से छूटता है, तीर्थ से नहीं।

. पांडवों की उत्तराखंड-यात्रा

लोमश ने युधिष्ठिर से कहा–राजन! अब तुम उशीरबीज, मैनाक, श्वेत और कालशैल नाम के पर्वत पार करके आगे बढ़ आये हो। यहां गंगा सात धाराओं में फैली है। अब हम मंदराचल पर्वत पर प्रवेश करेंगे। यहां गंधर्व, किन्नर, यक्ष,

---

. **भारत सावित्री, पृष्ठ - ।**

राक्षस, नाग–सुपर्ण निवास करते हैं। देखो, उधर कैलाश पर्वत की चोटी दिखायी देती है। उसी के पास विशालपुरी (बदरिकाश्रम तीर्थ) है। यह रास्ता बड़ा दुर्गम और खतरों से भरा है।

युधिष्ठिर ने भीम से कहा–लोमश जी को आज बहुत घबराहट हो रही है। यह पहली घटना है। द्रौपदी इस दुर्गम पथ पर कैसे चल पायेगी? अतएव भीम! तुम और सहदेव द्रौपदी, धौम्य, सारथि, रसोइए, सभी सेवक, रथ, घोड़े तथा मार्ग के कष्ट को न सह सकने वाले ब्राह्मणों को लेकर यहां से लौट जाओ और गंगाद्वार (हरद्वार) में ठहरो। मैं केवल नकुल और महर्षि लोमश को लेकर यहां से आगे बढ़ जाऊं। हम लोग स्वल्पाहार करते हुए आगे चलते रहेंगे।

भीम ने कहा–द्रौपदी मानसिक पीड़ा और रास्ते की थकावट से दुखी है, किंतु अर्जुन को देखने की लालसा से हम लोगों के साथ चल ही रही है। रसोइए, सेवक, ब्राह्मण या जो चाहें लौट जायं, परंतु द्रौपदी लौटना नहीं चाहती। जहां द्रौपदी नहीं चल पायेगी, मैं इसे कंधे पर चढ़ा लूंगा।

चलते–चलते कुलिंदराज सुबाहु का विशाल राज्य दिखायी दिया। यहां हाथी–घोड़े बहुत थे। यहां किरात, तंगण, कुलिंद आदि जंगली जातियों की बहुलता थी। यहां से हिमालय निकट था। कुलिंदराज सुबाहु ने पांडवों की अगवानी करके सत्कार किया। दूसरे दिन प्रातः युधिष्ठिर इंद्रसेन आदि सेवकों, रसोइयों और अपने सामानों को कुलिंदराज सुबाहु के संरक्षण में सौंपकर लोमश, द्रौपदी और भाइयों के साथ धीरे–धीरे पैदल चल दिये। सबके मन में अर्जुन को देखने का उत्साह था।

चलते–चलते पर्वताकार हड्डियां दिखायी दीं। लोमश ने कहा–यह नरकासुर की हड्डियां हैं। इसने दस हजार वर्ष घोर तप किया था। यह इंद्र को धत्त बोलाना चाहता था। इंद्र ने विष्णु भगवान के द्वार पर जाकर गोहार मचाया, तो उन्होंने आकर नरकासुर को मार गिराया। उसी की सफेद हड्डियां पर्वत के समान दिखती हैं।

इसके आगे एक और चुटकुला है। लोमश कहते हैं कि सत्युग की बात है। उस समय भगवान विष्णु ने यमराज के विभाग को भी अपने हाथ में ले लिया था। विष्णु भगवान का काम है पालन करना। अतएव वे पालन में लगे रहे, मारने के काम पर ध्यान ही नहीं देते थे। अतएव पृथ्वी का कोई भी प्राणी मरता नहीं था, किंतु पैदा होना बंद नहीं होता था; क्योंकि ब्रह्माजी अपना सृष्टि का काम क्यों रोकते? गलती थी विष्णु भगवान की, जो वे यमराज के विभाग का

काम, जो मारना है अपने हाथ में लेकर निष्क्रिय पड़े थे। इसलिए एक मंत्री को दूसरे विभाग का काम अपने जिम्मे नहीं लेना चाहिए।

फलतः हुआ यह कि पैदा होना चलता रहा और बरसात में पानी बढ़ने के समान प्राणियों की संख्या हजारों गुणा बढ़ गयी। परिणाम यह हुआ कि यह पृथ्वी अति भार से दबकर सैकड़ों योजन नीचे चली गयी। अतएव पृथ्वी देवी को अपने सभी अंगों में बड़ी पीड़ा हो रही थी। यहां तक कि उसकी चेतना लुप्त होती जा रही थी। इसलिए वह दुखी होकर भगवान नारायण की शरण में गयी और बोली–हे भगवान! मुझे बचावें, जिससे मैं जीवित रह सकूं। यह सुनकर भगवान द्रवित हो गये और उन्होंने सूअर का विशाल रूप धारण किया। उस समय उनके मुख में मात्र एक दांत था जो पर्वत के समान था। अंततः भगवान अपने इकले दांत से पृथ्वी को उठाकर सौ योजन ऊपर ले आये। फिर तो सर्वत्र हलचल होनी ही थी। देवता–मनुष्य सब घबरा गये। वे भगे, और ब्रह्माजी का दरवाजा खटखटाये। ब्रह्माजी ने कहा–घबराओ मत। बात यह है कि पृथ्वी प्राणियों के अति भार से बहुत नीचे चली गयी थी। उसे सर्वव्यापी अक्षर स्वरूप श्रीमान भगवान नारायण सूअर बनकर अपने दांत से उठाकर ऊपर लाये हैं।

देवता लोग ब्रह्मा से पूछे कि भगवान! बताइए कि भगवान सूअर इस समय कहां हैं? हम उनके दर्शन करने के लिए आतुर हैं। इतना सुनकर ब्रह्मा जी उन सबको लेकर सूअर भगवान के पास पहुंचे और उनका दर्शन कर कृतार्थ हुए और फिर अपने-अपने घर लौट गये (अध्याय –)।

मीमांसा

वैष्णवों ने भगवान नारायण की कल्पना कर उनके साथ अनेक काल्पनिक कहानियां गढ़कर जनता में फैलायी हैं जो भ्रम उत्पन्न करने वाली हैं। देव, दैत्य, दानव, राक्षस, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य–सब मनुष्य ही थे। वे सौ वर्ष के इर्दगिर्द ही जीकर मरते थे, तब कोई दस हजार वर्ष तप कैसे करेगा? जन्म-मरण निरंतर चलते हैं। इसका करने वाला कोई अलग नहीं है। पृथ्वी कहीं धंसती नहीं है और वह पीड़ित भी नहीं होती है। क्योंकि वह जड़ है। अतएव सूअर भगवान की आवश्यकता भी नहीं है। यह सब भक्ति के नाम पर गल्प है।

. गंधमादन की यात्रा, भीम की हनुमान जी से भेंट

पांडवों ने धनुष, बाण, तरकश, ढाल और तलवार लिए, हाथों में गोह के चमड़े से बने दस्ताने पहने और ब्राह्मणों को आगे कर द्रौपदी के साथ गंधमादन की तरफ प्रस्थान किये। पर्वत यात्रा करते समय जोर से आंधी आयी और वर्षा

होने लगी। एक दूसरे से बात भी नहीं कर पा रहे थे। लोग जगह–जगह गुफा या पेड़ का आधार लेकर ठहर गये। जब आंधी शांत हुई, इस दरम्यान द्रौपदी थक कर बैठ गयी। उसके बाद वह लेट गयी और अचेत जैसी हो गयी। युधिष्ठिर द्रौपदी की दशा देखकर विलाप करने लगे–जो सुरक्षित राजभवन की कोमल शय्या पर सोने योग्य है वह आज खुली जमीन पर पड़ी है। मैंने अपनी दुर्बुद्धि के कारण जुआ खेलने की कामना में फंसकर यह क्या कर डाला? पशुओं से भरे घोर जंगल में हमें द्रौपदी के साथ भटकना पड़ रहा है। द्रुपद ने द्रौपदी से यह कहकर हमें दिया था कि तुम पांडव के साथ सुख से रहोगी। परंतु मुझ पापी के कारण आज वह घोर वन में पड़ी है। लोगों ने द्रौपदी का उपचार किया। वे उठीं। युधिष्ठिर ने भीम से कहा–यहां विषम मार्ग है, द्रौपदी कैसे चलेगी? अंततः भीम ने अपने और हिडिंबा के पुत्र घटोत्कच और उसके साथी राक्षसों की याद की और वे वहां आ गये और इनके पूरे समाज को अपनी पीठ पर बैठाकर आकाश–मार्ग से उड़ चले। उड़ते समय इनको पर्वत, झरने, वन, नदियों, नगरों आदि को देखने का आनंद मिला। सब बदरिकाश्रम में पहुंचकर उतर पड़े। सबने नर–नारायण आश्रम के दर्शन किये।

वहां पर वे छह रात रहे। एक दिन हवा के वेग से एक सुंदर कमल–फूल द्रौपदी के पास आ गिरा। द्रौपदी ने भीम से कहा कि ऐसे फूल और लाओ। भीम कमल–फूल लाने के लिए निकल पड़े। वे पर्वत और वन में चलते हुए वहां पहुंच गये जहां संकरे रास्ता को रोके हुए हनुमान जी सो रहे थे। हनुमान जी ने उसी समय अपनी पूंछ फटकारी तो पर्वत हिल गये, पत्थर टूट–फूट कर बिखर गये। भीम के रोंगटे खड़े हो गये। जब आगे गये तब उन्होंने हनुमान जी को देखा। हनुमान जी ने भीम से कहा–भाई! मैं तो रोगी हूं। यहां सो रहा था तुमने क्यों जगा दिया? मैं तो पशु हूं, अतः मुझे ज्ञान नहीं है। तुम मनुष्य हो, बुद्धिमान हो, तुम्हें सभी पशुओं पर दया करना चाहिए। फिर तुम लोग दुष्कर्म करते हुए क्यों घूमते हो? तुम्हें धर्म का ज्ञान नहीं है क्या? तुम मंद–बुद्धि यहां के जानवरों को दुख देते हो। बोलो, तुम कौन हो? इस वन में क्यों और किसलिए घूमते हो? यहां न मनुष्यों का प्रवेश है न मानवीय भाव है। ठीक बताओ, तुम्हें आज इधर कहां तक जाना है? यहां आगे पर्वत अगम्य है। आगे सिद्ध लोग ही जा सकते हैं। यह देवलोक का मार्ग है। मैं तुम्हें दया–वश ही आगे जाने के संबंध में रोकता हूं। यहां मीठे फल हैं, खा लो और लौट जाओ। यदि तुम्हें मेरी बात ठीक समझ पड़े तो ऐसा करो।

भीम ने अपना परिचय दिया और कहा कि मेरे प्राण संकट में पड़े या जो हो, मैं आगे जाना चाहता हूं। आप रास्ता से हट जायं। हनुमान जी ने कहा–मैं

रोगी हूं, उठ नहीं पाऊंगा। तुम मुझे लांघकर चले जाओ। भीम ने कहा–निर्गुण परमात्मा सबकी देह में रहता है, मैं उसका अनादर कर लांघकर कैसे जा सकता हूं? यदि मुझे यह ज्ञान न होता तो मैं तुम्हें क्या इस पूरे पर्वत को उसी प्रकार लांघ जाता जिस प्रकार हनुमान जी समुद्र लांघ गये थे। हनुमान जी ने कहा–वह हनुमान कौन था, यदि उसके विषय में कुछ जानते हो तो कहो? भीम ने कहा–वे हमारे बड़े भाई थे। रामायण में उनकी ख्याति है। हनुमान जी श्रीराम की पत्नी सीता का पता लगाने के लिए सौ योजन समुद्र एक ही छलांग में कूद गये थे। मैं भी उन्हीं जैसा बलवान हूं। उठो, मुझे रास्ता दो, नहीं तो अभी तुम्हें मौत के घाट उतारता हूं। हनुमान जी ने कहा–मैं रोगी हूं, बूढ़ा हूं, उठ नहीं पाऊंगा, तुम मेरी पूंछ हटाकर आगे निकल जाओ। भीम तो बल के घमंड में थे। उन्होंने सोचा कि आज इस बूढ़े वानर को यमलोक भेज दूं। अतएव बायें हाथ से लापरवाही से हनुमान जी की पूंछ पकड़ी, किंतु उसको हिला नहीं सके।

इसके बाद भीम ने हनुमान जी को जानना चाहा कि वे कौन हैं? तब हनुमान जी ने अपना परिचय दिया, संक्षेप में रामकथा सुनायी, चारों युगों तथा चारों वर्णों के धर्मों का वर्णन किया और अंततः भीम को अपनी छाती से लगा कर उन्हें आश्वासन देकर अंतर्धान हो गये। भीम आगे बढ़कर कुबेर के सरोवर से कमल-फूल प्राप्त किये। इसको लेकर उसके रक्षकों से युद्ध करना पड़ा (अध्याय -)।

मीमांसा

दुर्गम पर्वत में चलना था, इसलिए घटोत्कच तथा राक्षसों को याद कर बुला लिया गया और उन पर बैठकर युधिष्ठिर का समाज पार हो गया। यह सब कल्पना की उड़ान है। राक्षस आदि मनुष्य ही थे और कोई मनुष्य आकाश में नहीं उड़ सकता।

लेखक कमल-फूल का बहाना बनाकर उपर्युक्त असंभव कहानी की तरफ भीम की यात्रा करायी है, जो वैष्णव भागवतों की देन है।

. पांडवों को आर्ष्टिषेण और कुबेर के उपदेश

जटासुर नाम का राक्षस था। वह ब्राह्मण बनकर पांडवों के साथ काफी दिन तक रहा। वह कहता था कि मैं समस्त वेद-शास्त्रों का ज्ञाता हूं। परंतु वह द्रौपदी को तथा पांडवों के अस्त्र-शस्त्र उड़ा ले जाना चाहता था। एक दिन उसने देखा कि भीम उपस्थित नहीं हैं। वे शिकार करने गये हैं। अतएव जटासुर

पांडवों के अस्त्र–शस्त्र, द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव का अपहरण करके चल दिया। सहदेव स्वयं तथा अपनी तलवार को उसकी पकड़ से छुड़ाकर भीम को वन में खोजने दौड़े और जोर–जोर से पुकारने लगे। अंततः भीम आ गये। सबको छुड़ाकर जटासुर को मार गिराया।

पांडव पुनः नर–नारायण आश्रम में रहने लगे। इसके बाद गंधमादन पर्वत की तरफ चले। वहां रास्ते में राजर्षि वृषपर्वा का आश्रम था। वहां जाकर उनसे मिले। वहां आठ दिन रहकर चलते समय अनेक साथी ब्राह्मणों तथा अपना सामान वृषपर्वा के आश्रम में धरोहर रूप रखकर उत्तर दिशा की ओर बढ़ गये।

चलते–चलते आर्ष्टिषेण का आश्रम मिला। वहां पांडवों ने जाकर उनका अभिवादन किया। राजर्षि आर्ष्टिषेण ने युधिष्ठिर को प्रश्नवाचक उपदेश दिया। उन्होंने पूछा–"तुम्हारा मन असत्य की तरफ तो नहीं झुकता? माता–पिता के प्रति सेवा–भक्ति है न? क्या तुम गुरुजनों, बड़े–बूढ़ों तथा विद्वानों का आदर करते हो? क्या तुम अपने उपकारी का उपकार करने के लिए तत्पर रहते हा? क्या तुम अपने अपकारी के प्रति उपेक्षा कर देने की कला जानते हो? तुम अपनी बड़ाई तो नहीं करते? क्या साधु–पुरुष तुमसे सम्मानित होकर तुम पर प्रसन्न रहते हैं? क्या तुम वन में रहकर सदा धर्म का पालन करते हो? तुम्हारे व्यवहार से पुरोहित धौम्य जी को क्लेश तो नहीं मिलता? क्या तुम दान, धर्म, तप, शौच, सरलता, क्षमा आदि द्वारा अपने बाप–दादों का अनुसरण करते हो? क्या तुम प्राचीन राजर्षियों के पथ पर चलते हो? कहावत है कि जब–जब अपने कुल में पुत्र या नाती का जन्म होता है, तब–तब पितृ लोक में रहने वाले पिता शोक और हर्ष करते हैं। उन्हें शोक इसलिए होता है कि हमें इनके पाप कर्म में हिस्सा तो नहीं बटाना पड़ेगा, और हर्ष इसलिए करते हैं कि हमें इनके पुण्य–कर्मों में से क्या कुछ भाग मिलेगा? जो माता–पिता, अग्नि, गुरु और आत्मा का आदर करता है वह लोक–परलोक को जीत लेता है।" युधिष्ठिर ने कहा– भगवन! आपने धर्म का निचोड़ कहा है। मैं यथाशक्ति इनका पालन करता हूं।

पाण्डव आर्ष्टिषेण के आश्रम पर रुक गये। वहां वे कुछ दिनों तक रहे। एक दिन द्रौपदी ने भीम को ललकारा कि आगे पर्वत पर जाकर वहां के राक्षसों को मारो और यह प्रदेश राक्षसों से रहित कर दो। भीम गये और वहां राक्षसों से युद्ध कर उनके सरदार मणिमान को मार गिराया तथा बहुत–से राक्षसों को मारा। युधिष्ठिर ने भीम के इस कर्म को अच्छा नहीं माना। उन्होंने इस

. **वन पर्व, अध्याय , श्लोक – ।**

. **वैष्णवों ने आदि शंकराचार्य को मणिमान नामक दैत्य का अवतार कहा है।**

प्रकार निरपराध लोगों की हत्या को लेकर भीम को डांटा और कहा कि ऐसे जघन्य कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। उन्होंने कहा कि राजद्रोह का कार्य नहीं करना चाहिए। तुमने केवल राजद्रोह नहीं, अपितु देवद्रोह भी किया है।

पिटे और दुखित राक्षस कुबेर के दरबार में जाकर अपना दुख बताये। राक्षसों ने कहा–धनेश्वर! एक मनुष्य ने आकर पूरे पर्वत को रौंद डाला है और निरपराध राक्षसों को मार डाला है। कुबेर पांडवों के पास आये, परंतु उन्होंने पांडवों पर क्रोध नहीं किया। मेलमिलाप की बात करके कुबेर ने पांडवों को उपदेश देना शुरू किया–"धैर्य, दक्षता, देश, काल और पराक्रम, ये पांच साधन हैं जिससे सांसारिक कार्य सिद्ध होते हैं। जो धैर्यवान, देश-काल को समझने वाला तथा धर्म का ज्ञाता है, वह दीर्घ काल तक शासन करता है। जो केवल क्रोध के वश रहता है, वह अपना विनाश करता है। जो कर्मों का भेद नहीं जानता, समय को नहीं पहचानता और कार्य की विशेषता को नहीं समझता, वह असफल होता है। जो सब प्रकार की शक्ति पाने का महत्त्वाकांक्षी है, वह नीचे जाता है। हे युधिष्ठिर! भीम धर्म को नहीं समझते, इन्हें अपने बल का बड़ा घमंड है, इनकी बुद्धि बालकों की-सी है, ये अति क्रोधी और उद्दंड हैं; अतएव आप इन्हें काबू में रखें। अब आप राजर्षि अर्ष्टिषेण के आश्रम पर जाकर विश्राम करें। हमारे यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि आपकी रक्षा करेंगे। भीम यहां दुस्साहस से आये हैं, यह समझकर इन्हें मना कर दें।"

कुबेर पांडवों को हित की बात बताकर अपने भवन कैलास को चले गये (अध्याय -)।

मीमांसा

जटासुर अपने को ब्राह्मण बताकर पांडवों के पास बहुत दिन रहा, परंतु द्रौपदी तथा पांडवों के अस्त्र-शस्त्र का अपहरण करना उद्देश्य था। इसका मतलब है कि असुर और ब्राह्मण नाम थे। सबकी सकल-सूरत मानवीय थी, क्योंकि सब मानव थे। एक वर्ग दूसरे वर्ग को धोखा देता है। ऋग्वेद में असुर शब्द एक सौ पांच बार आया है। केवल पंद्रह बार घृणाव्यंजक है, और नब्बे बार आदरसूचक है। असु कहते हैं प्राण को और असुर कहते हैं प्राणवान को, बलवान को।

आर्ष्टिषेण और कुबेर के उपदेश महत्त्वपूर्ण हैं जो जीवन में उतारने योग्य हैं।

. अर्जुन का गंधमादन पर्वत पर भाइयों से मिलकर द्वैतवन में आना

अर्जुन ने पांच वर्ष इंद्रभवन में रहकर अग्नि, वरुण, सोम, वायु, विष्णु, इंद्र, पशुपति, ब्रह्मा, परमेष्ठी, प्रजापति, यम, धाता, सविता, त्वष्टा और कुबेर संबधी सभी अस्त्र–शस्त्र इंद्र से ही प्राप्त किया। इसके बाद वे अपने भाइयों के पास गंधमादन पर्वत पर आ गये। स्वर्ग से इंद्र भी आकर पांडवों को सांत्वना देकर चले गये। इसके बाद अर्जुन अपने इंद्र भवन तथा स्वर्ग लोक–निवास के समय पांच वर्षों में घटी घटनाएं बताते हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन इंद्र–अर्जुन मिलन तथा शंकर–अर्जुन युद्ध आदि पहले संदर्भों में आ चुका है। जो अतिरिक्त बात है वह है पाताल–पुरी में जाकर निवात कवचों से युद्ध करके उनका संहार करना। इसके बाद हिरण्य पुरवासी पौलोम कालकेयों को भी पराजित करना।

युधिष्ठिर कहते हैं कि तुमने जो इंद्रादि देवों से अस्त्र–शस्त्र प्राप्त किये हैं, उनका प्रदर्शन करो। जब अर्जुन अगले दिन दिव्य अस्त्रों का प्रदर्शन करने चले, तब नारद ने आकर उन्हें रोक दिया। इसके बाद पांडव गंधमादन पर्वत से प्रस्थान कर दिये और वे बदरिकाश्रम, सुबाहुनगर, विशाखयूप होते हुए सरस्वती तटवर्ती द्वैतवन में आ गये (अध्याय –)।

मीमांसा

उपर्युक्त जो अग्नि, वरुण, सोम आदि नाम आये हैं वे वैदिक प्राकृतिक देवता हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण से जुड़े हैं, अतएव कृष्ण भक्तों एवं पांचरात्र वैष्णवों ने अर्जुन की बेतहाशा महिमा बढ़ाई है।

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"इस प्रकरण के अंत में फलश्रुति के दो श्लोक इस प्रकार हैं–कुबेर और इंद्र के साथ पांडवों के समागम की इस कथा को जो वर्ष भर तक व्रतवान ब्रह्मचारी रहकर पढ़ेगा, वह सब दुखों से छूटकर सौ वर्ष की आयु तक सुख से जीयेगा (, –)।" इससे यह निश्चित माना जा सकता है कि कुबेर और इंद्र से पांडवों का सम्मिलन बाद के किसी उत्साही लेखक की कल्पना है, जिसने यह उचित समझा कि देवलोक के इतने समीप पहुंचकर पांडवों को उन देवों से बिना मिले न रहना चाहिए। यहीं नंदन वन के वर्णन में लगभग साठ वृक्षों की सूची में आम्र के साथ सहकार का भी उल्लेख है (,)। आम्र बीजू आम के लिए और सहकार कलमी आम के लिए प्रयुक्त होता था। सहकार शब्द का पहली बार प्रयोग अश्वघोष के

सौन्दरनन्द काव्य (,) में हुआ है। उसके बाद तो अमरकोष, कुमारसंभव, रघुवंश, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र आदि गुप्तकालीन साहित्य में इस शब्द का प्रयोग बहुतायत से मिलने लगता है। इससे संकेत मिलता है कि गंधमादन प्रदेश की यात्रा का यह उलझा हुआ प्रकरण जिसकी पुनरुक्तियों से जी ऊबने लगता है, गुप्तकाल (ईसा के तीन सौ वर्ष बाद) में जोड़ा गया है।"

अर्जुन के निवात कवचों और कालकेयों से युद्ध के विषय में वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"कहा गया है कि निवात कवचों की पुरी पहले देवराज इंद्र के अधीन थी, यहां से असुरों ने देवों को पदच्युत कर दिया था (,)। इस उल्लेख के पीछे आर्य जाति और समुद्र के उस पार रहने वाली असुर जाति के किसी प्रागैतिहासिक संघर्ष की अनुश्रुति छिपी है। असुरों की राजधानी निर्माण–कौशल और अद्‌भुत आकार में देवों के नगर से भी विशिष्ट थी।

"निवात कवचों के युद्ध से वापस आते हुए मार्ग में अर्जुन को एक दूसरा अद्‌भुत नगर मिला, जिसका नाम हिरण्यपुर था। वहां कालकेय और पौलोम नामक असुरों का साम्राज्य था। इनके साथ भी अर्जुन ने युद्ध करके हिरण्यपुर को जीता। वहां के निवासी दानवी माया से युद्ध करते थे। वे कभी पृथ्वी पर आ जाते और कभी आकाश में उठ जाते। आसुरी माया का उल्लेख और भी प्राचीन वैदिक साहित्य में आता है। इसके पीछे निहित ऐतिहासिक तथ्य, इस समय धुंधला पड़ गया है। संभव है, हिरण्यपुर का आशय मोहनजोदड़ो के ध्वस्त नगर से हो, जिसकी विजय का संबंध महाकाव्य युग में अर्जुन के साथ जोड़ दिया गया।"

. युधिष्ठिर और नहुष का प्रश्नोत्तर

पांडव द्वैतवन में हैं। भीम शिकार करने गये, तो एक विशाल अजगर सर्प का सामना पड़ गया। उसने भीम को अपने में लपेट लिया। भीम ने सर्प से पूछा–तुम कौन हो? सर्प ने कहा–मैं राजर्षि नहुष हूं। मैं इंद्र था। मैंने ब्राह्मणों का अनादर किया। इसलिए अगस्त्य ने शाप दिया जिससे मैं सर्प हो गया। उनसे मैंने इस शाप से छूटने के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने कहा–जो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे देगा उससे तुम्हारे ऊपर का शाप छूट जायेगा। युधिष्ठिर पहुंचे। उन्होंने कहा–सर्प! तुम प्रश्न करो, मैं उत्तर दूंगा।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

सर्प–ब्राह्मण कौन है? उसके लिए जानने योग्य तत्त्व क्या है?

युधिष्ठिर–जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव, तपस्या और दया है, वह ब्राह्मण है। जानने योग्य तत्त्व परम ब्रह्म है जो सुख-दुख से परे है। इसे जानकर तथा इसमें स्थित होकर मनुष्य सभी शोक से पार हो जाता है।

सर्प–सत्य, दया आदि तो शूद्र में भी रहते हैं। तुमने सुख-दुख से परे तत्त्व जो बताया है, वह तो कहीं नहीं दिखता है।

युधिष्ठिर–जिसमें सत्य, दयादि सद्‌गुण हैं वह ब्राह्मण है और जिसमें ये सद्‌गुण नहीं हैं वह शूद्र है। संसारी पदार्थ सुख-दुखमय हैं; परंतु जो जानने योग्य है वह ब्रह्म–पद सुख-दुख से परे है।

सर्प–यदि आचार से ब्राह्मण की परीक्षा की जाय, तो उसके अनुसार आचरण न होने से ब्राह्मण नहीं है।

युधिष्ठिर–"हे महासर्प! महामते! संसार में मनुष्यता ही एक जाति है। जहां तक वर्णों की बात है, समिश्रण होने से मेरे विचार से उनकी परीक्षा नहीं हो सकती। क्योंकि सदा से सभी वर्णों की स्त्रियों से सभी वर्णों के पुरुषों ने बच्चे पैदा किये हैं। वाणी, मैथुन और जन्म–मरण सब में एक समान हैं। इस विषय में यह आर्ष प्रमाण भी है–'ये यजामहे' यज्ञ करते समय इसीलिए कहते हैं कि मनुष्य में वर्ण का निश्चय नहीं है। इसलिए तत्त्वदर्शी विद्वान शील (सदाचार) को प्रधान मानते हैं।" जब तक वेदों का अध्ययन नहीं किया, तब तक मनुष्य शूद्र ही है, ऐसा मनु ने कहा है। यदि वेद पढ़कर भी शील नहीं है तो मनुष्य शूद्र ही है।

अब युधिष्ठिर प्रश्न करते हैं–हे सर्प! किस कर्म से उत्तम गति होती है?

सर्प–सत्पात्र को दान देने से, सत्य और प्रिय वचन बोलने से और अहिंसा से उत्तम गति होती है।

युधिष्ठिर–दान और सत्य तथा अहिंसा और प्रिय भाषण में कौन महत्त्वपूर्ण है?

. **जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।**
संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ्‌मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम्
इदमार्षं प्रमाणं च ये यजामह इत्यपि।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः (वन पर्व , -)

सर्प–इनकी गुरुता–लघुता कार्य की महत्ता से समझी जा सकती है। किसी दान से सत्य का महत्त्व अधिक होता है और कोई दान ही सत्य से बढ़–चढ़ कर हो जाता है। कहीं प्रिय वचन की अपेक्षा अहिंसा गौरवपूर्ण होती है, और कहीं अहिंसा की अपेक्षा प्रिय भाषण श्रेष्ठतर होता है। इसके आगे कुछ और सामान्य प्रश्नोत्तर चले हैं।

नहुष पर लगा शाप समाप्त हुआ। वे पुनः स्वर्ग में जाकर इंद्र हो गये (अध्याय –)।

मीमांसा

बच्चों की इस कहानी में सार है प्रश्नोत्तर में आयी हुई ज्ञान की बातें। न कहीं स्वर्ग लोक है और न इंद्र। सर्प मानुषी भाषा नहीं बोल सकता।

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"नहुष चरित पर भागवतों का प्रभाव– आगे चलकर शांति पर्व (अध्याय) में भी एक नागराज के संवाद का उल्लेख है। वह जिस अजगर–व्रत का व्याख्यान करता है वह शंखपाल जातक के नागराज उपदेश से मिलता हुआ है। हमारा अनुमान है कि पांचरात्र भागवतों द्वारा नहुष–चरित का यह प्रकरण महाभारत में जोड़ा गया है। प्रथम तो आरण्यक पर्व में ही आगे चलकर कहा गया है कि नहुष और उसका पुत्र ययाति दोनों ने ही विष्णु–यज्ञ नामक महाक्रतु संपादित करके स्वर्ग प्राप्त किया था (, ; ,)। दूसरे सत्य, दान, दम और अहिंसा, ये वैष्णव–भागवतों के धार्मिक अभ्युत्थान के प्रमुख द्वार माने जाते थे। बेसनगर के गरुडध्वज वाले लेख में भी सत्य, त्याग, दम, इन तीन अमृत पदों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त आचार के आधार पर ब्राह्मणत्व की नयी परिभाषा और आचारवान शूद्रों को भी ब्राह्मणों के समान प्रतिष्ठित मानने की प्रवृत्ति–यह भी भागवतों की विशेषता थी। इस नये दृष्टिकोण की पूर्णतम अभिव्यक्ति भागवत के उस श्लोक में पायी जाती है, जिसमें कहा गया है कि किरात, हूण, आंध्र, पुलिंद, पुक्कस, खश, बर्बर, यवन एवं इनके अतिरिक्त अन्य नीच समझी जाने वाली जातियां विष्णु भगवान की शरण में आने से शुद्ध हो जाती हैं। शक–यवनों के यहां आने के बाद मथुरा में जिस भागवत धर्म का स्वर ऊंचा उठा, उसमें इस तथ्य की स्वीकृति तत्कालीन धार्मिक आंदोलन की विशेषता थी। शक–महाक्षत्रप शोडाश और कुषाण सम्राट वासुदेव, दोनों के समय में भागवत–आंदोलन अत्यधिक उन्नति को प्राप्त हुआ।"

. **भारत सावित्री, पृष्ठ – ।**

. अरिष्टनेमि और अत्रि मुनि के ब्रह्म और क्षत्रबल

पांडव द्वैतवन को छोड़कर पुनः काम्यक वन में चले आये। एक दिन एक ब्राह्मण ने उन्हें संदेश दिया कि शीघ्र ही श्रीकृष्ण द्वारका से आने वाले हैं। इतने में श्रीकृष्ण का रथ आ ही गया। साथ में सत्यभामा भी थीं। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर तथा भीम को प्रणाम किया, धौम्य मुनि का पूजन किया। नकुल-सहदेव ने आकर श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हृदय से लगाकर द्रौपदी को सांत्वना दी। श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा ने द्रौपदी का आलिंगन किया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से अपने वनवास के वृत्तांत सुनाकर सुभद्रा और अभिमन्यु के लिए पूछा कि वे कैसे हैं? श्रीकृष्ण ने द्रौपदी से कहा कि तुम्हारे बच्चे अपने नाना-मामा यहां रहना पसंद नहीं करते। वे आनर्त देश द्वारका में ही रहना पसंद करते हैं। सब बच्चे अस्त्र-शस्त्र सीखते हैं। इतने में मार्कण्डेय आते दिखायी दिये। वे पधारे, उनका सत्कार किया गया।

यहां पर मार्कण्डेय ने कर्म, कर्म-फल आदि का विवेचन किया है जो शुभ कर्म से आज सुखी है वह आगे भी सुखी रहेगा। आज के अच्छे-बुरे संस्कार ही आगे चलते हैं। लौकिक ऐश्वर्य में डूबने वाला अपना पतन करता है।

मार्कण्डेय ने एक कहानी कही–एक राजकुमार जब वन में शिकार करने गया, तब एक तपस्वी को बैठा देख उसे जानवर समझा और बाण मार दिया। जब निकट आया तो देखा तपस्वी मुनि हैं जो मरे पड़े हैं। राजकुमार को बड़ा पश्चाताप हुआ। वह अपने बड़ों के पास गया। उन सबको यह समाचार सुनकर कष्ट हुआ। वे सब खोजने निकले कि कौन तपस्वी मरा है। अंततः लाश वहां नहीं मिली। वस्तुतः जिसको बाण लगा था वह अरिष्टनेमि का पुत्र था और वह मरा नहीं था। अरिष्टनेमि ने कहा–राजन! यह मेरा पुत्र है, तपस्वी है। राजन! हम शुद्ध आचार-विचार से चलते हैं, आलस्य रहित हैं, नित्य संध्योपासना-परायण हैं, शुद्ध अन्न खाते हैं, न्यायपूर्वक धनोपार्जन करते हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, हम सत्य ज्ञान में प्रेम रखते हैं, कभी असत्य में मन नहीं लगाते और सदा धर्म का पालन करते हैं; इसलिए हमें मृत्यु का भय नहीं है।

अरिष्टनेमि ने आगे और कहा–हम शुभ ब्रह्मकर्म की चर्चा करते हैं; किसी के दोषों की चर्चा नहीं करते, हम अतिथियों को अन्न-जल से संतुष्ट करते हैं, आश्रितों का भरण-पोषण करते हैं, लोगों को खिलाकर खाते हैं। हम सदैव शम, दम, क्षमा, तीर्थ सेवन और दान में तत्पर रहते हैं, सत्संग में निवास करते हैं, सत्पुरुषों के पास रहते हैं, विवेक से जीवन व्यतीत करते हैं, इसलिए हमें मृत्यु से भय नहीं रहता।

मार्कण्डेय ने दूसरी कहानी कही–वेन के पुत्र पृथु जिन्हें वैन्य भी कहा जाता था, यज्ञ कर रहे थे। अत्रि मुनि उनके यज्ञ में गये और उन्होंने राजा पृथु की प्रशंसा करते हुए कहा–राजन! तुम सर्वोच्च राजा हो, ऐश्वर्यसंपन्न हो, धन्य हो, महर्षिगण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारे समान कोई धर्मज्ञ नहीं है।

अत्रि की बात सुनकर दूसरा ब्राह्मण गौतम चिढ़ गया। उसने अत्रि से कहा–तुम असत्य कहते हो। तुम स्वार्थ-वश ऐसा कहते हो। दोनों में तू-तू मैं-मैं होने लगी। कुछ ब्राह्मण पूछने लगे कि ये दोनों ब्राह्मण क्यों लड़ रहे हैं? इन्हें यज्ञ-मंडप में घुसने क्यों दिया गया? कणाद नाम के ब्राह्मण ने बताया कि ये दोनों किसी विषय पर विवाद कर रहे हैं। उसी के निर्णय के लिए यहां आये हैं। अत्रि ने राजा पृथु को विधाता कहा और गौतम ने इसका खंडन किया। फिर दोनों सनत्कुमार के पास दौड़ गये कि वे इसका निर्णय कर दें।

सनत्कुमार ने कहा–ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों संगठित रहें, तो सब काम सिद्ध कर सकते हैं। राजा धर्म रूप से विख्यात है। वही प्रजापति, इंद्र, शुक्राचार्य, धाता और बृहस्पति है। जिस राजा की प्रजापति, विराट, सम्राट, क्षत्रिय, भूपति, नृप आदि शब्दों से स्तुति की जाती है, उसकी पूजा कौन नहीं करेगा? राजा का वर्णन पुरायोनि (प्रथम कारण), युधाजित (संग्राम विजयी), अभिया (रक्षा के लिए सर्वत्र गमनशील), मुदित (प्रसन्न), भव (ईश्वर), स्वर्णेता (स्वर्ग प्राप्त कराने वाला), सहजित (तुरंत विजय करने वाला) तथा बभ्रु (विष्णु) कहकर किया जाता है। राजा सत्य का कारण, पुरानी बातों को जानने वाला तथा सत्यधर्म का प्रेरक है। ऋषियों ने अधर्म से डरकर अपना ब्रह्म-बल क्षत्रियों में स्थापित कर दिया है। जैसे सूर्य सारे अंधकार को मिटा देता है, वैसे राजा पृथ्वी का अधर्म मिटा देता है। इसलिए शास्त्र-प्रमाण से राजा की सर्वोच्चता सिद्ध होती है। इसलिए जिसने राजा को प्रजापति बताया है, उसी का पक्ष सत्य है।

इसके बाद राजा पृथु ने प्रसन्न होकर अत्रि मुनि को दान में बहुत धन दिया। अत्रि उस धन को अपने पुत्रों में बांटकर तपस्या करने वन में चले गये (अध्याय -)।

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"इस व्याख्या को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो हम राज्यशक्ति और धार्मिक संघ के बलाबल का विवेचन सुन रहे हैं, जिसमें अंतिम निर्णय राजा के पक्ष में दिया गया– *'उत्तरः सिद्धयेत पक्षो येन*

राजेति भाषितम्' अर्थात धर्म और राजा इनके विवाद में राजा ही सिद्ध पक्ष है (,)। *'राजा वै प्रथितो धर्मः'* (,)। यह दृष्टिकोण गुप्तकालीन ब्राह्मण साहित्य का मनःपूत सिद्धांत पक्ष था।"

. ताक्ष्र्य मुनि और सरस्वती संवाद

गीताप्रेस संस्करण से यह ग्रंथ लिखा जा रहा है। उसमें यह वन पर्व का एक सौ छियासी ( )वां अध्याय है। इसमें ताक्ष्र्य मुनि मनुष्य के कल्याण के साधन पूछते हैं और सरस्वती उत्तर देती हैं। इसके विस्तार में न जाकर इसके विषय में वासुदेवशरण अग्रवाल की इस पर टिप्पणी पर्याप्त है। वे लिखते हैं–

"अरिष्टनेमि ताक्ष्र्य अर्थात गुप्तकालीन गरुडध्वज वाले ताक्ष्र्य का सरस्वती के साथ एक संवाद दिया गया है। इसमें ताक्ष्र्य ने कल्याण का मार्ग पूछा है। सरस्वती ने उत्तर में कहा–'जो नित्य स्वाध्यायशील है, ब्रह्म को जानता है, गोदान, वस्त्रदान, स्वर्णदान, वृषभदान करता है, जो अग्निहोत्र करता है, वह देवों के सुखप्रद लोकों में जाता है।'

"यह सद्गृहस्थ भागवतों का नूतन आदर्श था। सरस्वती को इस संवाद में कई बार 'प्रज्ञा की देवी' कहा गया *(प्रज्ञां च देवीं सुभगे बिभर्षि)*, जो बौद्धों की नवीन देवी प्रज्ञापारमिता का स्मरण दिलाता है। वस्तुतः कुषाण काल के लगभग जैन, बौद्ध और ब्राह्मण बुद्धि की अधिष्ठात्री एक देवी की उपासना करने लगे थे, जिसकी मूर्तियां भी लगभग उसी समय से मिलने लगती हैं। ब्राह्मण–साहित्य में सरस्वती और भारती की परंपरा वैदिक काल से चली आती थी, किंतु उपासना के लिए उसकी मूर्ति का प्रचार इसी युग में हुआ।"

. मनु, मत्स्य और जल प्रलय

मनु विवस्वान (सूर्य) के पुत्र थे। वे बदरिकाश्रम में जाकर और दोनों बाहें उठाकर दस हजार वर्ष तपस्या करते रहे। उनका सिर नीचे झुका रहता था और नेत्र से एकटक देखते रहते थे। मनु जटा धारण किये गीले वस्त्र पहने चीरणी नदी के तट पर तपस्या कर रहे थे। उस समय मत्स्य (मछली) आकर बोला– मैं छोटा मत्स्य हूं। मुझे बड़े और बली मत्स्यों से सदा डर रहता है। अतएव

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**
. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

आप मेरी रक्षा करें। बली मत्स्य निर्बल मत्स्य को अपना भोजन बना लेते हैं यह हमारी जाति की आदत है। उक्त बातें सुनकर मनु ने दया कर उस मत्स्य को एक जल भरे घड़े में रख लिया। कुछ दिन में मत्स्य इतना बड़ा हो गया कि घड़ा में नहीं समाता था। अतः मत्स्य के आग्रह से मनु ने उसे मटके से निकाल कर एक बड़ी बावली में रख दिया। मत्स्य उसमें रहकर बढ़ता गया। वह इतना बड़ा हो गया कि उसका बावली में हिलना-डुलना कठिन हो गया। तब उसके आग्रह से मनु ने उसे गंगा में और फिर समुद्र में डाल दिया। तब मत्स्य ने मुस्कराते हुए मनु से कहा-आपने मेरी रक्षा की है। अब मेरा आपकी सेवा का अवसर आ रहा है। अब प्रलय आने वाला है। अब आप एक बड़ी और मजबूत नाव बनवाइए जिसमें मजबूत रस्सा लगा हो। आप उस पर सप्त ऋषियों के साथ बैठ जाइए और ब्राह्मणों ने जो सब प्रकार के बीज बताये हैं उन्हें अलग-अलग इकट्ठा करके नाव में रख लीजिए। उस नाव में बैठकर मेरी प्रतीक्षा कीजिएगा। मेरे सिर में दो सींग होंगे, इससे आप मुझे पहचान लेंगे।

मनु संसार के संपूर्ण बीज लेकर नाव में बैठ गये और उत्ताल तरंगों वाले महासागर में उनकी नाव तैरने लगी। मत्स्य आया, उसके सिर में सींग थे। मनु ने नाव का रस्सा उसके सींग में बांध दिया। उस समय पृथ्वी से लेकर आकाश तथा द्युलोक सब जलमग्न दिखता था। उस समय सप्त ऋषि, मनु और मत्स्य केवल नौ प्राणी जीवित दिखते थे। बहुत वर्षों तक मत्स्य उस नाव को खींचता रहा। वह उसे हिमालय के शिखर के पास ले गया। फिर मत्स्य हंसते हुए बोला कि इस नाव के रस्से को हिमालय की चोटी में बांध दीजिए। तभी से हिमालय का वह शिखर 'नौका बंधन' नाम से विख्यात हुआ।

मत्स्य ने कहा-मैं प्रजापति ब्रह्मा हूं। मेरे अलावा कुछ नहीं है। मैंने मत्स्य बनकर तुम्हारी रक्षा की है। अब मनु को चाहिए कि वे सबकी सृष्टि करें। मनु ने इसके बाद भी तपस्या की और सृष्टि का कार्य आरंभ किया। इस प्रकार यहां संक्षेप में मत्स्य पुराण की कथा कही गयी- *"इत्येतन्मात्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम्"* (वन० ,)। मेरे द्वारा कहा यह उपाख्यान सभी पापों का नाशक है। जो मनुष्य इसे प्रतिदिन सुनता है, वह सभी मनोरथ प्राप्त कर सुखी हो जाता है और वह सब लोकों में जा सकता है (अध्याय)।

मीमांसा

दस हजार वर्ष तप करने की बात लिखना पुराण लेखकों के लिए सरल है। वे कुछ भी लिख सकते हैं। जलप्लावन (बाढ़) की बात बाइबिल की शुरुआत

में ही आती है और यहोवा (ईश्वर) नूह को आज्ञा देकर एक जहाज बनवाता है, जो तीन सौ हाथ लंबी, पचास हाथ चौड़ी तथा तीस हाथ ऊंची होती है। उसी में नूह अपने परिवार तथा सृष्टि के सभी प्राणियों के जोड़े इत्यादि रखता है। चालीस दिन–रात घोर वर्षा होती है। नूह की आयु उस समय छह सौ वर्ष की थी। चालीस दिन के बाद वर्षा बंद हुई। नाव से बाहर के सब प्राणी मर गये। नाव से प्राणियों के जोड़ों को निकालकर यहोवा ने पुनः सृष्टि की।

विद्वान लोग सोचते हैं कि कभी विशाल एशिया क्षेत्र में घोर वर्षा से पृथ्वी जलमग्न हुई थी। उसी की स्मृति में नाना वर्गों के लोगों में अपने–अपने ढंग से कहानी गढ़ी गयी। उक्त कहानी के अंत में तो साफ आया है कि यहां संक्षेप में मत्स्य पुराण की कथा कही गयी है। इसके साथ फलश्रुति अंत में आती है कि जो इस कथा को सुनता है उसके पाप कटकर वह सफल–मनोरथ हो जाता है। इससे यह साफ जाहिर होता है कि यह अलग की कथा है और तैरकर महाभारत में जुड़ गयी है। वस्तुतः भागवत–लेखक ने इसे अपने उद्देश्य से जोड़ लिया है जिसका खुलासा आगे विस्तार से है। बाइबिल का लेखक अतिशयोक्ति में संयम बरतता है। वह नूह की उम्र जल प्रलय के समय छह सौ वर्ष ही रखता है; परंतु ब्राह्मण–पंडित मनु को दस हजार वर्ष तक तपस्या में ही लगाये रखता है। धार्मिक कहे जाने वालों को बड़े झूठ से परहेज नहीं रहता!

. प्रलय काल में बालमुकुंद और मार्कण्डेय

युधिष्ठिर मार्कण्डेय से कहते हैं–आप तो सब समय रहते हैं। आपने अनेक कल्पों की सृष्टि–रचना देखी है। आपके मुख से काल का निरूपण करने वाली कथा सुनना चाहता हूं। मार्कण्डेय कहते हैं–पुरुष सिंह! ये जो हम लोगों के पास बैठे हुए पीतांबरधारी श्रीकृष्ण हैं, ये ही संसार की सृष्टि और संहार करने वाले हैं। ये ही सबके कर्ता हैं। अब चारों युगों की अवधि सुनिए–सत्युग अड़तालीस सौ दिव्य वर्ष का; त्रेता छत्तीस सौ दिव्य वर्ष का; द्वापर चौबीस सौ दिव्य वर्ष का; और कलियुग बारह सौ दिव्य वर्ष का होता है। एक हजार चतुर्युग बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। इतने समय तक सृष्टि रहती है। जब ब्रह्मा सो जाते हैं, तब प्रलय होता है। जब जागते हैं, तब पुनः सृष्टि होती है। ब्रह्मा का एक दिन मनुष्यों के चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का होता है। सत्युग में पूरा धर्म रहता है, त्रेता में एक चतुर्थांश अधर्म आ जाता है, द्वापर आधा अधर्म और कलियुग में तीन हिस्सा अधर्म हो जाता है। कलियुग में छल

से शासन करने वाले, पापी, असत्यवादी, आंध्र, शक, पुलिंद, यवन, कांबोज, वाह्लीक, आभीर आदि राजा होंगे। ब्राह्मण भी भ्रष्ट होंगे (वन० , –)।

इसके बाद करीब तीस श्लोकों में कलियुग का बड़ा भयंकर रूप बताया गया है। फिर प्रलय का वर्णन किया गया है। प्रलय काल में सर्वत्र जलमग्न दशा में जब जल के अलावा कुछ नहीं दिखता था, तब मार्कण्डेय कहते हैं– एकार्णवमय जगत में मैं अकेला ही इधर-उधर मारा-मारा फिरने लगा। मैं दीर्घकाल तक उस जल में तैरता हुआ थक गया, परंतु कहीं मुझे आश्रय नहीं मिला। एक दिन मैंने उस अगाध जल-राशि में वट का एक विशाल वृक्ष देखा। वृक्ष पर चौड़ी शाखा पर एक पलंग था। उसके ऊपर दिव्य बिस्तर था। उस पर एक सुंदर बालक बैठा था। मैं सोचने लगा कि सारे संसार के नष्ट होने के बाद भी यह बालक यहां कैसे सो रहा है? बालक स्वयं बोल पड़ा–"भृगुवंशी मार्कण्डेय! मैं तुम्हें जानता हूं। तुम थक गये हो। तुम मेरे मुख में आ जाओ और विश्राम करो।"

उस बालक के ऐसा कहने पर मुझे उस समय अपनी लंबी जिंदगी पर बड़ा दुख और वैराग्य हुआ। मैं उस बालक के मुख में प्रवेश कर गया, फिर वहां मैंने समस्त राष्ट्रों और नगरों से भरी पृथ्वी देखी। मैं वहां घूमने लगा, तो मैंने वहां गंगा, सतलज, सीता, यमुना, कोसी, चंबल, वेत्रवती, चिनाब, सरस्वती, सिंधु, व्यास, गोदावरी, वस्वोकसारा, नलिनी, नर्मदा, तामपर्णी, वेणा, शुभदायिनी, पुण्यतोया, सुवेणा, कृष्णवेणा, महानदी, इरामा, वितस्ता, कावेरी, शोणभद्र, विशल्या तथा किसुना नदियां देखीं। इतना ही नहीं, सूर्य, चांद, सितारे, पर्वत जैसे–हेमवान, हेमकूट, निषध, श्वेतगिरि, गंधमादन, मंदराचल, महागिरि नील, सुमेरु, महेंद्र, विंध्यगिरि, मलय और पारिजात तथा वन आदि देखे। मैं सौ वर्षों से अधिक काल तक उस बालक के पेट में रहते हुए विश्व में विचरता रहा, किंतु उसका अंत नहीं लगता था। मैंने उसमें घबराकर उसी बालक की याद की, तो उसके मुख के बाहर आ गया। वह बालक पहले की तरह वटवृक्ष के पलंग पर बैठा मिला।

बालक ने हंसते हुए कहा–क्या तुम मेरे शरीर में विश्राम कर चुके? मैंने कहा–प्रभो, मैं आपको जानना चाहता हूं। आप कौन हैं? बालक ने बताया–मैं ही जगत की रचना करता हूं। मैंने ही पहले जल का नाम 'नारा' रखा था। वह नारा मेरा स्थिर 'अयन' (निवास स्थान) है; इसलिए मैं 'नारायण' नाम से प्रसिद्ध हूं। मैं ही सृष्टि-पालन तथा प्रलय करने वाला ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, कुबेर तथा यम हूं। अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी चरण, चंद्रमा-सूर्य नेत्र, द्युलोक मस्तक,

आकाश और दिशाएं कान, जल मेरा पसीना है। मैं ही शेष नाग होकर पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करता हूं। मैंने ही जल में डूबी हुई पृथ्वी को सूअर बनकर निकाला था। मैं ही पृथ्वी पर पाप बढ़ने पर अवतार लेकर दुष्टों का संहार कर लोक का उद्धार करता हूं। मैं शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करने वाला विश्वात्मा नारायण हूं। मैं सब प्राणियों को मोहित करके सोता हूं। मैं बालक नहीं हूं, तो भी जब तक ब्रह्मा नहीं जागते तब तक बालक बनकर मैं यहां रहता हूं। अंत में मार्कण्डेय युधिष्ठिर से कहते हैं–हे युधिष्ठिर! पुरातन प्रलय के समय जिन बाल–भगवान का मुझे दर्शन हुआ था; वे ही तुम्हारे संबंधी ये भगवान श्रीकृष्ण ही हैं– *स एष पुरुषव्याघ्र संबंधी ते जनार्दनः* (वन० ,)। श्रीकृष्ण ही सृष्टि के स्वामी हैं (अध्याय –)।

मीमांसा

मार्कण्डेय ने बालक–भगवान के पेट में जाकर जो विश्वरूप का दर्शन किया है वह केवल भारतवर्ष है; क्योंकि कथा–लेखक का ज्ञान–क्षेत्र केवल भारत है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"बालक के कहने पर मार्कण्डेय उसके मुख में प्रविष्ट हो गये। वहां उन्होंने उसके शरीर में जिस भौगोलिक क्षितिज का दर्शन किया, वह भारतवर्ष के जनपद और नगरों से भरी हुई पृथ्वी थी। वहां उन्होंने सीता, सिंधु, विपाशा, चंद्रभागा, शतद्रु, सरस्वती, गंगा, यमुना, चर्मण्वती, वेत्रवती, नर्मदा, गोदावरी, शोण, महानदी, कौकथी, इन नदियों को और महेंद्र, मलय, पारियात्र, विंध्य, गंधमादन, मंदराचल, मेरु, हिमालय और हेमकूट इन पर्वतों को देखा। मध्य एशिया की सीता (यारकंद) नदी से लेकर दक्षिण की गोदावरी तक एवं मेरु या पामीर से दक्षिण–पूर्वी समुद्र–तट के मंदराचल तक का भौगोलिक क्षितिज मार्कण्डेय के इस वर्णन की पृष्ठभूमि में है। गुप्तकालीन सम्राटों ने जिस भू–भाग का पुनः उद्धार किया था वह भी लगभग इतना ही था। चंद्रगुप्त द्वितीय के महरौली–स्तंभ–लेख में वाल्हीक तक के प्रदेश को युद्ध में जीतकर उसका उद्धार करने का स्पष्ट उल्लेख आया है। श्रीवत्सधारी नारायण यहां भागवत–धर्म के प्रतीक हैं, जहां गुप्त राजाओं के प्रभाव से भागवत–धर्म की पुनः स्थापना हुई। यही उस समय राष्ट्र और नगरों से आकीर्ण पृथ्वी थी जो मार्कण्डेय के दृष्टि–पथ में आयी– *सराष्ट्रनगराकीर्णां कृत्स्नां पश्यामि मेदिनीम्।*

"विष्णु की इस लीला से चकित हुए मार्कण्डेय ने स्वभावतः उनका स्वरूप जानना चाहा। उत्तर में जो विष्णु ने कहा, वह ठेठ नारायण–धर्म का दृष्टिकोण

है। एक शब्द में उसे हम विभूतियोग कह सकते हैं, जिसका उल्लेख गीता के दशम अध्याय में आया है।

"इस प्रसंग का सारांश यही है कि जितने देव हैं वे सब एक विष्णु की ही विभूतियां हैं।

लगभग पांच-छह सौ वर्षों से जो अनेक देवी-देवताओं का जमघट समाज में जुड़ गया था, उसको ठीक-ठिकाने लगाकर उसके भीतर से किसी दैव तत्त्व की संप्राप्ति की समाज को अनिवार्य आवश्यकता थी। वह कार्य भागवत-धर्म ने विष्णु के सार्वभौमत्व को स्थापित कर पूरा किया।"

सार यह है कि उपर्युक्त घोर काल्पनिक कहानी कृष्ण-उपासकों द्वारा गढ़ी गयी है। सब जगह से कल्याणकारी उपदेश लेना चाहिए।

. कलियुग, कल्कि अवतार और उपदेश

कलियुग का वर्णन विगत एक सौ नवासी ( )वें अध्याय में भी आया और इस एक सौ नब्बे ( )वें अध्याय में भी है। जिसमें बताया गया है कि वर्णधर्म लुप्त हो जायगा और सब पापाचारी हो जायंगे। इतना ही लिखकर विस्तार को समास में पूरा कर देना ठीक है। क्योंकि इस अध्याय में करीब नब्बे श्लोकों में कलियुग की भयंकरता का वर्णन है। अंत में लिखा है कि पूर्ण पतन हो जायगा, तब संभल नामक गांव में एक ब्राह्मण के घर में विष्णु यश नामक बालक पैदा होगा। वही कल्कि या कल्की अवतार कहलायेगा। वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा।

इसके आगे एक सौ इक्कानबे ( )वें अध्याय में आया है कि वह कल्कि अवतार सारे पापियों को मारकर सत्युग की स्थापना करेगा। मार्कण्डेय ने कहा-युधिष्ठिर! तुम्हें किसी ब्राह्मण का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि यदि ब्राह्मण कुपित हो जाय तो वह सारे लोक का विनाश कर सकता है। तुम सब प्राणियों पर दया करो, सबके हितैषी रहो, सब पर प्रेमभाव रखो। किसी का दोष न देखो। सदैव सत्यवादी, कोमल स्वभाव, जितेंद्रिय होकर प्रजा पालन करो। मैं सबका स्वामी हूं, ऐसा अहंकार कभी न करो। तुम अपने को सदैव पराधीन समझते रहो-*सततम् परवान् भव* (वन० ,)। तुम मेरी बातों पर विश्वास करो (अध्याय -)।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ - ।**

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"इस प्रकरण में आया हुआ एडूक शब्द गुप्तकालीन भाषा का है। विष्णु–धर्मोत्तर पुराण में भी एडूक–पूजा का उल्लेख है, किंतु वहां उसका संबंध शिवलिंग के साथ बताया गया है। मूलतः एडू शब्द द्रविड़ भाषा का है, जिसका अर्थ था अस्थि। अस्थि–गर्भ मंजूषाओं के ऊपर, जिन्हें 'शरभ' भी कहते थे, बनवाने वाले स्तूपों के लिए यहां एडूक शब्द का प्रयोग हुआ है। इस पर्व के पहले अलिंजर शब्द आ चुका है (, ,), जो पहले–पहल गुप्तकालीन भाषा के स्तर में प्राप्त होता है। अमरकोष, पादतांडिकम् (लगभग ई०) एवं बाण के हर्षचरित में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इन संकेतों से ज्ञात होता है कि मार्कण्डेय समास्या–पर्व केवल भाषा की कसौटी पर भी लगभग गुप्तकालीन ठहरता है। विष्णु यश कल्कि की पहचान श्री जायसवाल ने मालवराज यशोवर्धन से की थी। उसकी मंदसोर–प्रशस्ति (ई०) से ज्ञात होता है कि उसका नाम विष्णुवर्धन भी था और उसने राजाधिराज परमेश्वर सम्राट की उपाधि धारण की थी। वह अपने आपको मनु, भरत, अलर्क, मांधाता आदि के समान कल्याण युक्त कहता था। उसने वर्णसंकर को मिटाकर सतयुग के समान अपने राज्य को निरापद बना दिया और हूणाधिपति मिहिरकुल को भी अपने चरणवंदन के लिए बाधित किया। महाभारत के चक्रवर्ती विष्णु यश और अभिलेखों के सम्राट विष्णुवर्धन की पहचान सत्य हो तो महाभारत का यह प्रकरण छठी शती के मध्य भाग में निर्मित हुआ।

"भारतीय इतिहास में पहली बार शक–यवनों के और दूसरी बार हूणों के आक्रमण और राज्याधिरोहण से जो सामाजिक उथल–पुथल और राजनैतिक उत्पीड़न हुआ, उसी का संकेत महाभारत के इन दोनों युग–संक्षयों के वर्णनों में ज्ञात होता है। पहली बार भागवत धर्म के अभ्युदय से लोक–कल्याण हुआ और दूसरी बार चक्रवर्ती विष्णु यश ने हूण रूपी म्लेक्षों से पृथ्वी का उद्धार किया।"

. लंबे जीवन में दुख और सुख क्या हैं?

वन पर्व के एक सौ बानबे ( )वें अध्याय में ब्राह्मण वामदेव के दो घोड़े राजा शल ने अपने काम के लिए मांगे और काम करके लौटा देने की बात कही, परंतु उन्होंने घोड़े नहीं लौटाये, इसलिए वे वामदेव के कोप से मारे गये।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ – ।**

इसके बाद शल के दूसरे भाई दल राजा हुए। वे भी घोड़े नहीं लौटा रहे थे। उन्हें भी पराजय का मुंह देखना पड़ा। फिर दल की समझदार पत्नी के बीच-बचाव करने पर दल की रक्षा हुई, और वामदेव के घोड़े लौटा दिये। इस प्रकार एक बेजान कहानी बीच में ठोंक दी गयी है।

अगले अध्याय में इंद्र और बक मुनि की कहानी आती है। इंद्र ने जाकर बक मुनि से पूछा–महाराज! आपकी एक लाख वर्ष की अवस्था हो गयी है। आपने लंबे समय से दुनिया देखी है। आप अपना अनुभव बताइए कि लंबी जिंदगी में क्या दुख होता है?

बक ने कहा–अप्रिय मनुष्यों के साथ रहना पड़ता है। प्रिय-वियोग का दुख सहना पड़ता है। दुष्ट मनुष्यों का संग प्राप्त होता है। अपने नेत्रों के सामने स्वजनों की मृत्यु होती है। स्वजनों का वियोग होने पर जीवन-निर्वाह के लिए दूसरों के सहारे रहना पड़ता है और उनके तिरस्कार सहना पड़ता है। भ्रष्ट मनुष्यों की उन्नति तथा सज्जनों का अपमान तथा संयोग-वियोग देखना पड़ता है। समृद्धशाली देवता, दानव, गंधर्व, मनुष्य, नाग तथा राक्षस, ये सभी विपरीत दशा में पहुंचकर, इनमें उलटफेर होकर ये क्या से क्या हो जाते हैं। अच्छे लोग दुष्टों से सताये जाते हैं। धनी लोग निर्धनों को सताते हैं। मूढ़ लोग मौज-शौक करते हैं और ज्ञानी क्लेश भोगते हें। मानव जीवन में क्लेश और दुखों की अधिकता दिखती है।

इंद्र ने पूछा–महाराज! लंबी जिंदगी वालों का सुख क्या है?

बक ने कहा–कुमित्रों के पास न जाकर दिन में केवल एक बार शाक पका कर खा लेने वाला सुखी है। बिना चिंता किये प्रतिदिन भोजन मिलना सुख है। उसे लोग पेटू नहीं कहते। जो दूसरे का सहारा नहीं लेता, अपितु अपने द्वारा उपार्जित शाक बनाकर खाता है, वह सुखी है। दूसरों के सामने हाथ न फैला कर अपने घर में फल-शाक खाने वाला सुखी है; परंतु दूसरे के घर में अपमान सहकर पकवान खाना अच्छा नहीं है। साधु पुरुषों ने दूसरे के सहारे पर रहकर जीवन-निर्वाह करने का सदा विरोध किया है। जो पराया अन्न खाना चाहता है वह कुत्ते की तरह खून चाटता है। जो दूसरों को खिलाकर खाता है वह सुखी है (अध्याय)।

मीमांसा

लंबी जिंदगी वाले बक मुनि की बात आती है। लंबी जिंदगी सौ वर्ष या उससे कुछ अधिक काफी है; किंतु पौराणिकों को बिना अतिशयोक्ति किये आनंद नहीं आता। इसलिए यहां बक मुनि की अवस्था एक लाख वर्ष कह

डाली गयी जो असंभव है। शेष जीवन की सामान्य बातें हैं और महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव अधिक जीने की कामना न करे, किंतु स्वावलंबी और संतुष्ट होकर जीये।

. बड़ा वह है जो विनम्र है, सुहोत्र और शिबि

कुरुवंशी राजा सुहोत्र सत्संग से लौट रहे थे। उन्होंने देखा कि आगे राजा शिबि का रथ आ रहा है। आमने–सामने दोनों के रथ आ गये। दोनों ने दोनों का सम्मान किया। परंतु वे दोनों राजा अपने को बराबरी का समझ रहे थे, इसलिए दोनों में से किसी ने अगले के लिए रास्ता नहीं छोड़ा। इतने में नारद आ गये। उन्होंने कहा–यह क्या बात है, जो तुम दोनों एक दूसरे का रास्ता रोककर खड़े हो? तब उन दोनों राजाओं ने कहा कि महाराज! ऐसी बात नहीं है। पहले के व्यवस्थापकों ने यह उपदेश दिया है कि जो सभी बातों में अपने से बढ़ा–चढ़ा हो या बलवान हो, उसी को रास्ता देना चाहिए। हम दोनों मित्रवत हैं, एक समान हैं। हम विचार नहीं कर पाते कि हम दोनों में से कौन श्रेष्ठ है और कौन छोटा? इसके बाद नारद ने *श्लोकत्रयमपठत्*–तीन श्लोक पढ़े। उनका अभिप्राय यह है–क्रूर मनुष्य भी जब किसी द्वारा अपने लिए कोमलता का बरताव पाता है, तब उसके लिए वह भी कोमल हो जाता है। परंतु साधु पुरुष दुष्टों के प्रति भी कोमलता का बरताव करता है। फिर वह साधु पुरुषों के लिए कोमलता का बरताव क्यों नहीं करेगा? देवता ही प्रत्युपकारी होते हैं ऐसा नियम नहीं है, मनुष्य भी अपने ऊपर किये गये उपकार का बदला सौ गुना उपकार कर सकता है। हे सुहोत्र! राजा शिबि शील–स्वभाव से तुमसे उत्तम हैं। नीच प्रकृति वाले मनुष्यों को कुछ देकर उन्हें वश में करे, असत्यवादियों को सत्य भाषण से जीते, क्रूर को क्षमा से और दुष्ट को उत्तम व्यवहार से अपने वश में करे।

अतएव तुम दोनों उदार हो। इस समय तुम दोनों में एक जो अधिक उदार हो, वह मार्ग छोड़कर हट जाय। यही उदारता का उत्तम आदर्श है।

उक्त बातें सुनकर राजा सुहोत्र ने राजा शिबि को अपनी दायीं ओर करके उन्हें रास्ता दे दिया (अध्याय)।

मीमांसा

नारद प्रायः हर जगह आ जाते हैं। वस्तुतः यह उपदेश देने की विधि है और नारद ऐसे पात्र हैं जो पुराणों की कथाओं को समझाने के लिए अधिकतम स्थानों में व्याप्त हैं। उनके उपदेश उत्तम हैं।

. बड़ा वह है जो विनम्र है, सुहोत्र और शिबि

. दान और सुकीर्ति की प्रशंसा

नहुष के पुत्र राजा ययाति सिंहासन पर विराजमान थे। एक ब्राह्मण आया। उसने राजा से कहा–राजन! मैं गुरु को दक्षिणा देने के लिए आपसे भिक्षा मांगने आया हूं। मुझे संकोच लगता है। जब कोई मनुष्य किसी से कुछ मांगता है तब वह मांगने वाले से अत्यंत द्वेष करता है। अतएव राजन! मैं पूछता हूं कि जो कुछ आपसे मांगू तो क्या आप दे सकते हैं?

राजा ने कहा–ब्रह्मन! मैं किसी को कुछ देकर उसकी बार-बार चर्चा नहीं करता हूं। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं कि जो आप मांगेंगे वह मैं दूंगा। मैं देकर बहुत प्रसन्न होता हूं। मै लाल रंग की एक हजार गायें आपको दे रहा हूं। मैं याचक पर कभी क्रोध नहीं करता और देकर पश्चाताप नहीं करता।

दूसरी कहानी–वृषदर्भ और सेदुक दो राजा थे। दोनों ही अच्छे थे। राजा वृषदर्भ का यह व्रत था कि ब्राह्मणों को सोना-चांदी के अलावा कुछ नहीं देना चाहिए। उनका यह व्रत राजा सेदुक जानता था। एक ब्राह्मण राजा सेदुक के पास आया और उनसे एक हजार घोड़े की याचना की। राजा ने इनकार कर दिया और कहा–ब्रह्मन! आप राजा वृषदर्भ के यहां चले जाइए। वे महा दानी हैं। ब्राह्मण वृषदर्भ के यहां गया और उसने राजा से एक हजार घोड़े की याचना की, तो राजा उसे कोड़े से पीटने लगा। ब्राह्मण ने कहा–राजन! मैं निरपराध हूं। आप मुझे क्यों मार रहे हैं? ब्राह्मण देवता राजा को शाप देने के लिए उद्दत हो गये। राजा ने कहा–ब्रह्मन! जो अपना धन न दे, उसको शाप देना क्या आपका ब्राह्मणत्व है? ब्राह्मण ने कहा–मैं राजा सेदुक की प्रेरणा से आपके यहां घोड़े मांगने आया हूं। राजा ने कहा–ब्रह्मन! आज जो भी राजकीय कर (टैक्स) मेरे पास आयेगा, उसे मैं अगले कल आपको दे दूंगा। जिसे कोड़े से मारा जाय, उसे खाली हाथ कैसे लौटाया जा सकता है? राजा ने दूसरे दिन एक दिन की आय (आमदनी) दे दिया। इस प्रकार राजा ने एक हजार से अधिक घोड़े का मूल्य दिया। वह राजा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सोना-चांदी के अलावा कोई दान कर नहीं सकता था। तीसरी कहानी है कि इंद्र और अग्नि क्रमशः बाज और कबूतर बनकर राजा शिबि की परीक्षा लेने आये। कबूतर राजा की गोद में आकर शरण लिया। बाज उसे खाना चाहता था। राजा शिबि ने अपने अंगों का मांस बाज को देकर शरणागत कबूतर की रक्षा करना चाहा। इंद्र और अग्नि राजा शिबि की सज्जनता से प्रसन्न होकर चले गये। यह कहानी पीछे अट्ठाइस ( )वें संदर्भ में राजा उशीनर की परीक्षा में आयी है।

इसके आगे भी एक कहानी है जिसमें दान देने के गुणों की प्रशंसा है। दान देकर उसकी चर्चा न करे, छल–कपट–रहित रहे और क्रोध पर विजय कर ले।

इसके आगे एक सौ निन्यानबे ( )वें अध्याय में एक चुटकुला आता है। पांडवों ने मार्कण्डेय से पूछा कि महाराज! आपसे भी पहले का पैदा हुआ कोई दीर्घजीवी है? मार्कण्डेय ने कहा–है क्यों नहीं? एक समय राजर्षि इंद्रद्युम्न पुण्य क्षीण होने से स्वर्ग से गिरकर धरती पर आ गया। उसकी जगत में सुकीर्ति नष्ट हो गयी थी। इंद्रद्युम्न ने मेरे पास आकर पूछा–क्या आप मुझे पहचानते हैं? मैंने कहा–मैं नहीं पहचानता। उसने पुनः पूछा–क्या आपसे पहले का पैदा हुआ कोई पुराना प्राणी है? मैंने कहा–हिमालय पर एक उलूक रहता है जिसका नाम प्रावारकर्ण है। वह मुझसे भी पहले का जन्मा हुआ है। हम दोनों उसके पास गये। इंद्रद्युम्न ने उससे पूछा–क्या आप मुझे पहचानते हैं? उसने कहा–मैं आपको नहीं जानता। इंद्रद्युम्न ने पूछा–क्या आप से भी पहले का जन्मा हुआ कोई है? उसने कहा–इंद्रद्युम्न नाम के सरोवर में नाड़ीजंघ नाम का बक रहता है। वह मुझसे बहुत पहले का जन्मा हुआ है। तब इंद्रद्युम्न मुझको और उलूक को लेकर उस सरोवर के पास नाड़ीजंघ बक के निकट ले गया। हम लोगों ने उस बक से पूछा–क्या आप राजा इंद्रद्युम्न को जानते हैं? उसने कहा–मैं नहीं जानता हूं। तब हम लोगों ने उससे पूछा–क्या दूसरा कोई प्राणी है जो आपसे पहले जन्मा हो? उसने कहा– है; इसी सरोवर में अकूपार नाम का कछुआ रहता है, वह मुझसे भी पहले का जन्मा है।

हम लोगों ने कछुआ को सूचना दी वह आया। हम लोगों ने उससे पूछा–क्या आप राजा इंद्रद्युम्न को जानते हैं? उसने दुख प्रकट करते हुए कहा–क्यों नहीं जानता हूं, वह तो हजार यज्ञ करने वाला हुआ है। उसके द्वारा दक्षिणा में दी गयी गायों के आने-जाने से यह सरोवर बन गया है जिसमें मैं निवास करता हूं।

इसके बाद स्वर्ग से विमान उतरा और उसमें से आवाज आयी–राजा इंद्रद्युम्न! आइए, स्वर्ग चलिए। आप कीर्तिमान हैं। इसके लिए यह श्लोक है–जब तक मनुष्य की सुकीर्ति पृथ्वी पर रहती है, तब तक वह स्वर्ग में निवास करता है। जब तक जिसकी अपकीर्ति जगत में फैली रहती है, तब तक वह अधोगति में रहता है। अतएव मनुष्य को सदैव सेवा एवं पुण्य कर्म में लगे रहना चाहिए। सदैव धर्म का आचरण करना चाहिए। इसके आगे दो सौ ( )वां अध्याय एक सौ उन्तीस ( ) श्लोकों का है जिसमें दान, सेवा, इंद्रिय-मन पर संयम आदि पर कहा गया है (अध्याय –)।

मीमांसा

उपर्युक्त कल्पित कहानी का अर्थ है कि महत्त्व अधिक दिन जीने का नहीं है। महत्त्व है सुकीर्तिवान होना। स्वर्ग-नरक अलग कहीं नहीं है। पवित्र मन, वाणी तथा कर्म वाला सुकीर्तिमान मनुष्य सदैव स्वर्ग में है। जैसे कछुए ने इंद्रद्युम्न की सुकीर्ति का वर्णन किया वैसे तुरंत उसके लिए स्वर्ग से विमान आ गया। इस कल्पित कथन का अर्थ यही है कि सुकीर्तिमान स्वर्ग में वास करता है।

ऊपर की कहानियों में ब्राह्मण-लेखकों ने ब्राह्मणों को दान के रूप में धन देने के लिए राजाओं के मन में उत्साह भरा है।

. धुंधुमार की कथा

उत्तंक नाम के ऋषि थे। वे अपने आश्रम में रहकर तप करते थे। उनकी पश्चिम दिशा में धुंधु नाम का दैत्य था जो बालुका के भीतर रहकर सोता था और अपनी सांस के जोर से इतनी धूल उड़ाता था कि आकाश ढक जाता था। इसलिए उत्तंक ने अवध-नरेश कुवलाश्व से आग्रह किया कि वे धुंधु को समाप्त करें। कुवलाश्व ने आकर धुंधु को मारा इसलिए उनका नाम धुंधुमार पड़ गया।

इस कहानी में विष्णु की उपासना की भरमार है। कहानी के अंत में आया है-जो मनुष्य इस विष्णु के कीर्तन रूप पवित्र कथा को सुनता है वह धर्मात्मा और पुत्रवान होता है। जो पर्वों पर यह कथा सुनता है, वह दीर्घ आयु तथा ऐश्वर्यशाली होता है। उसे रोग का भय नहीं रह जाता है (अध्याय -)।

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं-"यह फलश्रुति स्पष्ट ही इसके जोड़े जाने की सूचना देती है। राजस्थान की मरुभूमि और वैष्णव भागवत धर्म का जो प्रचार हुआ, उसी को इस कथानक द्वारा सूचित किया गया है। रेगिस्तान के ठीक नुक्कड़ पर चित्तौड़ के पास नगरी नामक स्थान में वासुदेव और संकर्षण इन दो देवों की पूजा के लिए स्थापित नारायण वाटक नामक एक प्राचीन महा स्थान या मंदिर मिला है, जो लगभग दूसरी शती ईसा पूर्व का है। मथुरा और उसके चारों ओर शुंगकाल में भागवत धर्म का जो एक प्रभावशाली आंदोलन उठा था, उसी का बाह्यमंडलवर्ती केंद्र प्राचीन मध्यमिका या नगरी का यह

नारायण वाटक था। वहां तक भागवत धर्म के प्रसार का संकेत इस कथानक में है, वह मरुभूमि का शासक था। अयोध्या के कुवलाश्व ने पौरव धुंधु का वध किया, जिस कारण वह प्राचीन अनुश्रुति में धुंधुमार कहलाया है।"

तात्पर्य है कि रेगिस्तान का धुंधु नामक राजा था। धूल तो रेगिस्तान के प्राकृतिक गुणों से उड़ती है। उसमें धुंधु–नरेश का कोई दोष नहीं था। एक राजा दूसरे राजा पर चढ़ाई करके विजय करता ही था और युद्ध में विजित राजा मारा भी जाता था। कथाकार ने सीधे न लिखकर अनुश्रुतियों और दंतकथाओं के अनुसार चमत्कारी बनाकर लिखा है।

. कौशिक ब्राह्मण, पतिव्रता स्त्री और धर्मव्याध के उपदेश

कौशिक नाम का विद्वान ब्राह्मण था। वह अंगों सहित वेदों तथा उपनिषद् आदि शास्त्रों का अध्येता था। एक दिन वह एक पेड़ के नीचे बैठा वेदपाठ कर रहा था। पेड़ पर से एक बगुली ने उसके ऊपर बीट कर दी। कौशिक को क्रोध आ गया। उसने उस बगुली को क्रोधभरी दृष्टि से देखा। बगुली मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उसे पश्चाताप हुआ कि मैंने इस निरीह प्राणी पर क्रोध किया। उसके भिक्षा का समय आया। उसने एक गृहस्थ के द्वार पर पुकारा–भिक्षा दीजिए। भीतर से किसी स्त्री ने उत्तर दिया–ठहरिये, अभी देती हूं।

वह घर की स्वामिनी थी। बरतन मांज–धो रही थी। इतने में उसका भूखा–प्यासा पति आ गया, अतः उसे भोजन–पानी देकर उसका सत्कार करने लगी। इतने में उसे द्वार पर खड़े हुए ब्राह्मण की याद आयी। वह भिक्षा लेकर द्वार पर पहुंची। ब्राह्मण गुस्सा में था। उसने कहा–तुम्हारा यह कैसा बरताव है? जब तुम्हें इतना विलंब करना था तब मुझे ठहरने के लिए क्यों कहा? मुझे जाने देती। स्त्री ने शांति से कहा–विद्वान! क्षमा करें। मेरे लिए सबसे बड़े देवता मेरे पति हैं। वे भूखे और थके हुए आये थे, मैं उन्हीं की सेवा में लग गयी थीं।

कौशिक ने कहा–क्या ब्राह्मण बड़े नहीं होते हैं? तुमने पति को ही बड़ा कह दिया। गृहस्थी में रहकर तुम ब्राह्मण का अपमान करती हो? स्त्री ने कहा–ब्राह्मण बड़ा है, परंतु जब क्रोध न करे। ब्रह्मन! क्रोध न करो, मैं बगुली नहीं हूं

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

जो मैं आपके क्रोध से जल जाऊं। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें। "हे द्विजश्रेष्ठ! मनुष्यों का एक बहुत बड़ा दुश्मन है, वह उनके शरीर में रहने वाला क्रोध है। जो मोह और क्रोध को त्याग देता है उसे सज्जन लोग ब्राह्मण कहते हैं। जो सत्य बोले, गुरु को संतुष्ट रखे, किसी द्वारा मारे जाकर भी उसे न मारा, उसको देवता (सज्जन) ब्राह्मण कहते हैं। जो जितेन्द्रिय, धर्मपरायण, स्वाध्याय-लीन, अंतर-बाहर पवित्र और जिसने काम-क्रोध पर विजय कर ली है, उसे सज्जन ब्राह्मण कहते हैं। जिस धर्मज्ञ मनस्वी का संसार के सभी प्राणियों के प्रति आत्मभाव है और सभी धर्मों पर जिसका समान प्रेम है, उसे सज्जन ब्राह्मण कहते हैं।" जो पढ़े-पढ़ावे, यज्ञ करे-करावे, दान दे, दान ले वह ब्राह्मण है। जो ब्रह्मचर्य से रहे, उदार बने, वेदों का अध्ययन करे, सतत सावधान होकर अध्ययनशील रहे, उसे सज्जन ब्राह्मण कहते हैं। स्वाध्याय, मन पर संयम, सरलता, इंद्रिय-निग्रह ब्राह्मणत्व है। विप्रवर! आपको धर्म का ज्ञान नहीं है। यदि आप धर्म का सही स्वरूप जानना चाहते हैं, तो मिथिलापुरी के धर्मव्याध के पास चले जायं। यदि मेरे मुख से कोई अनुचित बात निकल गयी हो, तो उसे क्षमा करें।

उक्त बातें सुनकर कौशिक ब्राह्मण ने उस स्त्री को सही कहा, उसे धन्यवाद दिया और अपने को धिक्कारता हुआ घर लौट आया। वह दूसरे दिन मिथिला नगरी के लिए चला और अनेक जंगल, नदी, गांव, नगर पार कर मिथिला पहुंचा। वहां की विशाल नगरी को घूमघाम कर देखा तथा अंततः धर्मव्याध की दुकान पर पहुंचा। कौशिक ने देखा कि धर्मव्याध भैंसे और सूअर का मांस बेच रहा है। कौशिक एकांत स्थान में खड़ा हो गया। धर्मव्याध दुकान से उठकर उसके पास गया और प्रणाम किया तथा कहा-आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूं? पतिव्रता स्त्री ने आपको मेरे पास भेजा, यह सब मैं जानता हूं और

. **क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम**
यः क्रोधमोहौ त्यजति तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
यो वदेदिह सत्यानि गुरुं संतोषयेत च
हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
जितेन्द्रियो धर्मपरः स्वाध्यायनिरतः शुचिः
कामक्रोधौ वशौ यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
यस्य चात्मसमो लोको धर्मज्ञस्य मनस्विनः
सर्वधर्मेषु च रतस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।

(वनपर्व, अध्याय , श्लोक -)

जिस उद्देश्य से आप आये हैं, उसे भी जानता हूं। व्याध की उक्त बातें सुनकर कौशिक ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ।

धर्मव्याध ने कहा–ब्रह्मन! यह स्थान आपके ठहरने के योग्य नहीं है। यदि आपकी रुचि हो तो आप मेरे घर चलें। दोनों घर आये। घर साफ–सुथरा और सुंदर था। व्याध ने कौशिक को आसन दिया, उनकी पूजा की। कौशिक ने कहा–तात! यह मांस बेचने का काम आपके योग्य नहीं है। मुझे आपके इस घोर कर्म से कष्ट हो रहा है। व्याध ने कहा–यह धंधा मेरे बाप–दादों से चला आया है, इसलिए मैंने भी इसको अपनाया। मैं स्वयं किसी जीव की हिंसा नहीं करता। दूसरे के मारे हुए सूअर और भैंसे के मांस को बेचता हूं। मैं स्वयं मांस नहीं खाता। मैं दिन में उपवास करता हूं और रात में भोजन करता हूं। मैं सत्य बोलता हूं, किसी की निंदा नहीं करता हूं, यथाशक्ति दान करता हूं, अतिथियों की सेवा करता हूं, कुटुंबियों का भरण–पोषण करता हूं और अपना जीवन–निर्वाह करता हूं।

आगे व्याध ने कहा–सेवा करना, दूसरों द्वारा किया गया अपराध सहना, सबका आदर करना, ये सद्‌गुण स्वार्थ–त्याग किये बिना जीवन में नहीं आ सकते। अनुकूल में हर्ष, प्रतिकूल में शोक, अर्थसंकट में घबराहट मन में न लाये। बुरा करने वाले के साथ बुरा न करे, पराये की निंदा न करे, अपनी प्रशंसा न करे।

वेद का सार सत्य है, सत्य का सार इंद्रिय–मन का संयम है, संयम का सार त्याग है। त्याग ही शिष्टता है। यह शरीर नदी है, इंद्रियां जल हैं, कामादि मगरमच्छ हैं। यह नदी जन्म–मरण के दुर्गम प्रदेश में बह रही है। धैर्य की नाव पर बैठकर ही इसे पार किया जा सकता है। सत्य और अहिंसा महान धर्म हैं। मनुष्य अपने स्वभाव–वश बहता है। उत्तम पुरुष वह है जो पर–दोष–दर्शन का अभाव रखकर क्षमा, शांति, संतोष, प्रिय भाषण आदि सद्‌गुणों से चलता है।

मेरा मांस बेचना घोर कर्म है, किंतु यही मुझे पैतृक धंधा मिला है। मैं कैसे इस निंदित कर्म से छूटूं, ऐसा निरंतर विचार करते रहने से बुरे कर्मों से छुटकारा मिल जाता है। खेती करने में जीव मरते हैं, हमारे चलते–फिरते समय बहुत–से जीव पैर के नीचे दबकर मर जाते हैं, ज्ञान–विज्ञान संपन्न व्यक्ति से भी बैठे–सोते बहुत से जीव मर जाते हैं; इसमें आप क्या समझते हैं? आकाश से धरती तक देहधारी जीव भरे हैं, मनुष्यों के अनजान में कितने जीव मर जाते हैं; इसमें आप क्या समझते हैं? संत लोगों की जीवन–यात्रा में जीव मरते हैं, उनके देह

व्यवहार में जीव मर ही जाते हैं। अहिंसाव्रत में दृढ़ लोगों द्वारा भी विवशता से उनके द्वारा जीव मर जाते हैं। मित्र दूसरे मित्रों को और शत्रु अपने शत्रुओं को, वे उत्तम कर्म में लगे हुए हों, तो भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। बंधु-बांधव अपने संपन्न बंधुओं से प्रसन्न नहीं रहते। अपने को विद्वान मानने वाले मूर्ख लोग गुरुजनों की निंदा करते हैं। इस प्रकार संसार में अनेक उलटी बातें दिखती हैं। अधर्म का काम भी लोग धर्मयुक्त मानते हैं। इस विषय में आप क्या समझते हैं?

वृद्ध जन कहते हैं कि धर्म के विषय में वेद ही प्रमाण है, परंतु धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। उसके असंख्य भेद और शाखाएं हैं।

यदि सत्य बोलने से किसी प्राणी की हत्या होती हो तो वह सत्य असत्य है; और असत्य बोलने से किसी प्राणी की प्राण-रक्षा हो जाय, तो वह असत्य सत्य है। वस्तुतः परिणाम में जो प्राणियों के लिए हितकर हो वही सत्य है। मूर्ख मनुष्य दुख आने पर देवताओं की निंदा करता है। वह यह नहीं समझता कि वह उसके ही दुष्कर्मों का परिणाम है। मूर्ख मनुष्य दुख को सुख और सुख को दुख मानता है। यदि कर्म-फल की विवशता न होती तो जिसकी जब इच्छा होती, वह तब वही प्राप्त कर लेता। बड़े संयमी और कार्यकुशल मनुष्य कार्य करते-करते थक जाते हैं, परंतु वे इच्छानुसार फल नहीं पाते। कितने लोग हैं जिनको बहुत गतिशील नहीं देखा जाता है, परंतु लक्ष्मी उनके चरण चूमती है। कितने लोग हैं जो देवी-देवता की बड़ी आराधना करते हैं, परंतु उनके पुत्र दुष्ट निकलते हैं। ये अपने कर्म-फल हैं।

जिनके भोजन का भंडार भरा है, उनमें से कितने लोग हैं कि उनको संग्रहणी-रोग है, अतएव वे ठीक से खा नहीं सकते हैं, कितने लोग हैं, जो भोजन को ठीक से पचा सकते हैंपरंतु उनको भोजन मिलने में बड़ी कठिनता होती है। इस प्रकार संसार असहाय और मोह-शोक में डूबा है। जीव अपने कर्मों के अत्यंत प्रबल प्रवाह में थपेड़े खाते हुए इधर-उधर बहते रहते हैं। यदि स्ववश होते तो न वे बूढ़े होते, न मरते। सब लोग सब समय मनचाही वस्तुएं प्राप्त करते रहते। किसी को अप्रिय के दर्शन न करने पड़ते। सभी मनुष्य सभी के ऊपर-ऊपर होकर ही जाना चाहते हैं; अर्थात सब लोग सबसे ऊंचा होना चाहते हैं। उसके लिए प्रयत्न भी करते हैं, परंतु उनके मनोरथ व्यर्थ जाते हैं।

एक ही लग्न एवं मुहूर्त्त में जन्में हुए अगणित लोगों के जीवन के स्तर एक नहीं होते। ये सनातन जीव आत्मा अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल पाते हैं।

जीव अमर है। देह अंतकाल में पंचतत्त्वों में लीन हो जाती है और जीव अपने कर्म के अनुसार पुनः देह धारण करता है। जीव अपने किये हुए कर्मों के अनुसार जन्म, जरा और मृत्यु के चक्कर में पड़ा हुआ संसार में पचता है। अबोधी जीव निरंतर दुख भोगता है, परंतु वह दुख को ही सुख मानता है। पुण्यवान अपने शुभ कर्मों के कारण सुखी रहते हैं। कोई-कोई सुज्ञ जीव सांसारिक विषयों में सुख नहीं मानते! वे विषयों से विरक्त हो जाते हैं। वे राग-द्वेष में नहीं पड़ते। वे संसार को नश्वर समझकर त्याग के लिए प्रयत्न करते हैं। वे मोक्ष को अनुपम मानकर बैठे नहीं रहते। वे आत्मसंयमित होकर अंतर्मुख हो जाते हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पांच तत्त्व हैं। पृथ्वी में पांच गुण हैं–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। जल में चार गुण हैं–शब्द, स्पर्श, रूप और रस। अग्नि में तीन गुण हैं–शब्द, स्पर्श तथा रूप। वायु में दो गुण हैं–शब्द और स्पर्श। आकाश में एक ही गुण है–शब्द। पांचों तत्त्व एक दूसरे से मिले रहते हैं। जब मनुष्य विषयों से अपनी इंद्रियों को हटाकर अंतर्मुख होता है तब वह तपस्या करता है। इंद्रिय-संयमी मनुष्य सबको आत्मवत समझकर समता से रहता है। ऐसा व्यक्ति निष्पाप होता है। जो अज्ञान से उत्पन्न होने वाले मानसिक ताप से सर्वथा मुक्त हो गया है, वह कृतार्थ है। स्थूल शरीर रथ है, मन लगाम है, बुद्धि सारथि है, आत्मा रथी है और इंद्रियां घोड़े हैं। स्थिर बुद्धि रूपी सारथि मन-लगाम को काबू में रखकर इंद्रिय-घोड़ों को हांकता है, तो आत्मा-रथी सुखपूर्वक अपने गंतव्य–मोक्ष को पहुंचता है।

तीन गुण हैं–सत, रज और तम। सत्त्वगुण प्रकाशक है, रजोगुण कर्मों में प्रवृत्त करता है और तमोगुण मोह-मूढ़ता पैदा करता है। मोहग्रस्त, विषय-लंपट, अविवेकी, क्रोधी तथा आलसी तमोगुणी है। प्रवृत्ति-मार्ग की चर्चा करने वाला, सलाह देने में कुशल, दूसरों के गुणों में दोष न देखने वाला, सब समय कुछ करने की इच्छा रखने वाला, जिसमें कठोरता और अभिमान की बहुलता है और जो मनुष्यों पर अपना रोब गांठता रहता है, वह रजोगुणी है। जिसमें ज्ञान है, नये-नये कर्मों से बचने की प्रवृत्ति है, जो दूसरों के दोष नहीं देखता, जो क्रोध-शून्य एवं पूर्ण सहनशील है, जो जितेंद्रिय एवं अंतर्मुख है, वह सतोगुणी है। सतोगुणी आत्मज्ञानसंपन्न होकर रजो-तमो गुण के सांसारिक प्रपंच से विरत हो जाता है। जब वह जानने योग्य तत्त्व आत्मा को जान लेता है, तब उसे सांसारिकता से वैराग्य हो जाता है। वैराग्य का लक्षण है अहंकार का विलीन हो जाना और जीवन में सरलता का पूर्ण प्रकाश हो जाना। वह राग-द्वेष-मुक्त एवं

संशयरहित होता है। जिसमें पूर्ण सरलता आ गयी, वह ब्राह्मण हो जाता है– "*आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते* (वन पर्व ,)।"

साधक अपने चित्त की पवित्रता से शुभाशुभ सभी कर्मों को नष्ट कर देता है। जिसका मन प्रसन्न है वह अपने आप में स्थित होकर शाश्वत सुख भोगता है। जैसे भोजन से तृप्त होकर मनुष्य सुख से सोता है, जैसे वायु-रहित स्थान में दीपक स्थिर प्रकाश देता है, वैसे पवित्र चित्त वाला सदा सुखी रहता है। साधक हलका भोजन करे, मन पवित्र रखे, रात के प्रथम और पिछले पहर में आत्म-चिंतन एवं ध्यान करे। निरंतर आत्मरत मुक्त ही है। लोभ और क्रोध मन में उठने न दे। यही तप है और यही संसार से तरने का सेतु है।

क्रोध को दूर करके तप की रक्षा करे, द्वेष को दूर करके धर्म की रक्षा करे, मान-अपमान के द्वंद्वों से ऊपर उठकर आत्मज्ञान की रक्षा करे और प्रमाद को त्यागकर आत्मा की रक्षा करे। बड़ा धर्म है क्रूरता का त्याग। क्षमा सबसे बड़ा बल है। सत्य सबसे बड़ा व्रत है। आत्मज्ञान परम ज्ञान है–"*आत्मज्ञानम् परम् ज्ञानम्* (वन. ,)।" जिसके सभी आयोजन कामना-रहित होते हैं और जिसने त्याग की आग में अपना सर्वस्व जला दिया है, वही त्यागी और ज्ञानी है। "दृश्य संसार से वियोग कराने वाले तथा योग नाम से कहे जाने वाले इस ब्रह्मयोग को स्वयं जानना चाहिए और इसका संपादन करना चाहिए–*तं विद्याद् ब्रह्मणो योगं वियोगं योगसंज्ञितम्* (वन० ,)।"

किसी को कष्ट न दे, सबसे मैत्री भाव का व्यवहार करे। किसी से वैर न करे। परिग्रह-रहित, संतुष्ट, कामना-रहित तथा लोलुपता-रहित रहे। यही उत्तम ज्ञान की स्थिति है। लोक-परलोक के भोगों की इच्छा का त्याग करके सर्वथा शोक-रहित आत्मस्थिति में रमने वाला इंद्रिय-मन का संयमी अजित-पद को जीत लेता है, निश्चल आत्मानंद में रहता है। जो व्यवहार करते हुए अनासक्त है, सदा सबसे निस्पृह, आत्मलीन है, वह शाश्वत सुख भोगता है। इसकी उपलब्धि में बाधक केवल अज्ञान है। सुख-दुख दोनों से ऊपर उठ जाने वाले की अनंत ब्रह्मपद में स्थिति होती है। अनासक्ति से यह दशा आती है।

आगे धर्मव्याध ने कहा–इन सारी उपलब्धियों का जो हेतु है वह मेरी माता-पिता की सेवा है। ब्रह्मन! आप मेरे घर में प्रवेश कर मेरे माता-पिता के दर्शन कीजिए। दोनों घर के भीतर गये। वह चार कमरों का सुंदर स्वच्छ घर था। माता-पिता पलंग पर बैठे थे। पास में आसन रखे थे और धूप, चंदन, केशर आदि से वहां का वातावरण सुगंधित था। धर्मव्याध ने माता-पिता के चरणों में लगकर प्रणाम किया। माता-पिता अपने पुत्र की सेवा से प्रसन्न थे।

धर्मव्याध ने अपने माता-पिता से कौशिक ब्राह्मण का परिचय कराया, तब उन दोनों ने उठकर अतिथि का सत्कार किया। दोनों में कुशल-मंगल पूछने का शिष्टाचार हुआ। धर्मव्याध ने कौशिक ब्राह्मण से कहा–मेरे माता-पिता मेरे मुख्य देवता हैं। जो देवता के लिए करना चाहिए वह सब मैं माता-पिता के लिए करता हूं। मेरे प्राण, स्त्री, पुत्र और मित्र सब माता-पिता की सेवा के लिए हैं। मैं स्त्री-पुत्र सहित इन्हीं की सेवा में लगा रहता हूं। मैं इनके चरण धोता हूं। मैं स्वयं इन्हें नहलाता हूं। मैं स्वयं इन्हें भोजन परोसकर खिलाता हूं। मैं वैसी ही बात बोलता हूं जो इनके अनुकूल हो। इनको अप्रिय लगने वाली बात मैं कभी नही बोलता हूं। मैं आलस्य छोड़कर इनकी सेवा करता हूं। "हे द्विजोत्तम! उन्नति चाहने वाले मनुष्य के लिए पांच ही गुरु हैं–माता, पिता, अग्नि, आत्मा और गुरु।"

धर्मव्याध ने कौशिक ब्राह्मण से कहा–आप माता-पिता की उपेक्षा करके; उनसे बिना आज्ञा लिए वेदाध्ययन के लिए घर से निकल पड़े हैं। आपके इस अपराध से आपके माता-पिता दुखी हुए हैं। आप घर जाकर अपनी सेवा से उन्हें प्रसन्न कीजिए। कौशिक ने धर्मव्याध की बात मानकर कहा कि आप सत्य कह रहे हैं। आपकी बात मान कर अपने माता-पिता की सेवा में समर्पित हो जाऊंगा। आपको मैं ब्राह्मण मानता हूं। "जो शूद्र दम, सत्य और धर्म के पालन में सदैव तत्पर रहता है, उसे मैं ब्राह्मण मानता हूं। सदाचार से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है।" यथा–

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः

(वन पर्व , -)

धर्मव्याध ने कहा–औषध से शरीर के दुख को दूर करे और विवेक से मन के दुख को दूर करे। यही ज्ञान का अर्थ है। विवेकवान बालक की तरह शोक और विलाप नहीं करते। मंदबुद्धि के लोग ही प्रतिकूलता आने पर दुखी होते हैं। संयोग-वियोग होना संसार का स्वभाव है। उसमें सुखी-दुखी होना अज्ञान है। विवेकवान हानि वाले काम से दूर हट जाते हैं। केवल शोक करने से दुख ही हाथ लगता है। विवेकवान दुख-सुख के द्वंद्वों से ऊपर रहते हैं। मूर्ख मनुष्य असंतुष्ट रहता है और विवेकवान सदैव संतुष्ट रहते हैं। असंतोष का अंत नहीं है। अतएव संतोष ही परम सुख है। जो रास्ता तय कर लिया है वह परम गति

. **पंचैव गुरुवो ब्रह्मन् पुरुषस्य बुभूषतः।**
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च द्विजसत्तम् वन० ,

का साक्षात्कार कर लेने वाला शोक नहीं करता– *"न शोचन्ति गताध्वानः पश्यन्तः परमां गतिम्* (वन पर्व ,)।" मन को विषाद की तरफ न जाने दे। विषाद भयंकर विष है। जैसे क्रोध से भरा सर्प मनुष्य को डंस लेता है, वैसे विषाद मनुष्य को डंस लेता है। विषादग्रस्त मनुष्य का बल क्षीण हो जाता है। वह अपना कार्य सिद्ध नहीं कर सकता। दुखी होकर बैठे रहने से समस्या का समाधान नहीं होता, किंतु प्रसन्न होकर समाधान का उपाय सोचना चाहिए और कार्य का संपादन करना चाहिए। शोक और विषाद न करके आवश्यक कार्य शुरू कर दे। प्रयत्नशील व्यक्ति दुख से छूट जाता है।

संसार के सारे पदार्थ क्षणभंगुर हैं ऐसा विचारकर जो बुद्धि से पार होकर परम शांति में स्थित हैं, वे शोक नहीं करते। मैं सब समय अंतकाल की प्रतीक्षा करता हूं, सदैव अपने माने गये शरीर की मृत्यु देखता हूं, इसलिए शोक नहीं करता हूं। उपर्युक्त सत्य ज्ञान का सदैव मनन करते रहने से मुझे न कभी दुख होता है, न अवसाद होता है, न उत्साहहीनता होती है।

कौशिक ब्राह्मण ने धर्मव्याध के उपदेश से कृतकृत्य होकर उसकी प्रदक्षिणा की और नमस्कार कर अपने घर चला गया। घर जाकर कौशिक माता-पिता की सेवा में लग गया; फलस्वरूप माता-पिता उससे प्रसन्न होकर रहने लगे (अध्याय -)।

मीमांसा

इस कथा के लेखक पंडित ने शुष्क वेद पाठियों के अहंकार के ऐंठन को विस्तार से तोड़ा है और स्त्री का पति-सेवा-कर्तव्य और पुत्र का माता-पिता-सेवा-कर्तव्य का सुंदर बोध कराया है। शुष्क ज्ञान काम नहीं देता। आवश्यक कर्तव्य कर्म के किये बिना न मन पवित्र हो सकता है और न शांति मिल सकती है। पति-सेवा तथा माता-पिता की सेवा से स्त्री और धर्मव्याध सर्वज्ञ हो गये थे, यह अतिशयोक्ति है, अतिमहिमा है। सर्वज्ञ कोई नहीं होता। पुत्र को माता-पिता की सेवा करना चाहिए और पति-पत्नी को परस्पर मित्रवत रहना चाहिए। आज के लिए यही अच्छा उपदेश है। पति-सेवा और माता-पिता की सेवा आवश्यक है। परंतु इसी से सब सिद्धि मिल जायगी, यह भावुकता है। आध्यात्मिक उन्नति एवं परम शांति के लिए विवेकवान सद्गुरु-संतों का सत्संग, सेवा, भक्ति और स्वरूपज्ञान चाहिए। यह सब धर्मव्याध के व्याख्यान में आया है।

धर्मव्याध की इस कथा में व्याध के मुख से निकली यह बात कितनी मार्मिक है कि मैं हर समय मौत की याद रखता हूं, शरीर के अंत काल को

देखता हूं। इसलिए मुझे शोक नहीं होता। इससे यह प्रकट किया गया है कि विरक्त–गृहस्थ कोई हो, जिसका विवेक पूर्ण जग जायगा, वही जीवन्मुक्ति का लाभ ले सकता है। और इसका अधिकारी केवल ब्राह्मण कहलाने वाला ही नहीं है, किंतु निम्न कहे जाने वाले परिवार के लोग भी हैं, क्योंकि वे मानव हैं और सब मानव समान हैं।

धर्मव्याध के प्रवचन में आया है कि शब्द गुण आकाश का है। यह पारंपरिक धारणा मात्र है। आकाश शून्य है और शून्य का कोई गुण नहीं होता। अतएव शब्द गुण वायु का ही है।

इसके आगे दो सौ सत्तरह ( ) से लेकर दो सौ बत्तीस ( ) कुल सोलह ( ) अध्यायों में अग्नि के विविध रूपों की कठोर कल्पनाएं हैं जिसका मूल, ऋग्वेद के अग्नि सूक्तों में मिलता है। उसके साथ अग्नि से छह मुख वाले स्कंद की उत्पत्ति की कल्पना है जो देवताओं के सेनापति बनाये जाते हैं (अध्याय –)। अग्नि का मूल रूप वर्णन 'वेद क्या कहते हैं?' के अग्नि वैश्वानर नामक इक्यावन ( )वें संदर्भ में देख सकते हैं।

. सत्यभामा के सामने द्रौपदी का पातिव्रत्य पर प्रवचन

श्रीकृष्ण अपनी पत्नी सत्राजित–कुमारी सत्यभामा के साथ वन में पांडवों से मिलने आये हैं। वे सब वहां उपस्थित हैं। यह तो मार्कण्डेय और युधिष्ठिर संवाद की अनेक कथाओं में हम भटककर बहुत दूर चले गये हैं। सत्यभामा ने द्रौपदी से पूछा–तुम इन वीर पांच पतियों को कैसे अपने वश में रखती हो? ये कभी तुम पर क्रोधित नहीं दिखते। सभी पति तुम्हारे अधीन रहते हैं और सब तुम्हारे मुंह को देखते रहते हैं। मुझे भी ऐसे व्रत, तप, स्नान, मंत्र, औषध, विद्या–शक्ति, जड़ी–बूटी, जप, होम अथवा दवा बताओ जिससे मेरा पति मेरे वश में रहे।

द्रौपदी ने कहा–पति को वश में रखने के लिए जिन साधनों को तुम पूछ रही हो, वह साध्वी स्त्रियों का आचरण नहीं है, अपितु कुलटा स्त्रियों का है। हम उसकी चर्चा कैसे कर सकती हैं? तुम्हारी जैसी सुशीला स्त्री का इस प्रकार प्रश्न करना अथवा अपने पति पर संदेह करना कदापि उचित नहीं है। तुम तो बुद्धिमान तथा श्रीकृष्ण की प्रियतमा हो। यदि पति को यह मालूम हो जाय कि

उसकी पत्नी उसे वश में करने के लिए मंत्र-तंत्र एवं जड़ी-बूटी का प्रयोग करती है तो वह उसी प्रकार उद्विग्न हो जायगा, जिस प्रकार घर में सांप घुसने पर घर वाले उद्विग्न हो जाते हैं। "उद्विग्न को शांति कहां और अशांत को सुख कहां?–*उद्विग्नस्य कुतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखम्* (वन पर्व ,)।" मंत्र-तंत्र से पति कहीं अपने वश में होता है? ऐसा भ्रम पालने वाली स्त्रियां शत्रुओं द्वारा भेजी हुई औषधियों को खिलाकर अपने पतियों को भयंकर रोगों से ग्रस्त कर देती हैं। धोखेबाज लोग किसी स्त्री को यह झांसा देकर कि यह पति को वश में करने की जड़ी-बूटी है, विष भी दे सकते हैं; जो उसके पति के जीवन के लिए खतरा बन सकता है। उनके दिये हुए ऐसे चूर्ण हो सकते हैं जिनको जीभ पर रखते ही मनुष्य मर जाय। कितनी स्त्रियों ने ऐसी हानिकारक दवाएं अपने पतियों को खिलाकर उन्हें जलोदर तथा कोढ़ का रोगी, अल्पायु में बूढ़ा, नपुंसक, अंधा, गूंगा और बहरा बना दिया है। इस प्रकार भ्रम में पड़ी वे पापी स्त्रियां अपनी मूर्खता से पतियों को विपत्ति में डाल देती हैं। अतएव शीलवती नारियों को चाहिए कि ऐसा काम कभी न करें।

द्रौपदी ने आगे कहा–मैं अपने पतियों पांडवों के साथ जैसा बरताव करती हूं वह इस प्रकार है। मैं अहंकार, कामना और क्रोध छोड़कर सावधानी से पांडवों तथा उनकी पत्नियों की सेवा करती हूं। मैं अपनी कामनाओं का शमन करके और अपने मन को समेटकर अपने पतियों के मन की रक्षा करती हूं। अहंकार और अभिमान को अपने मन में आने नहीं देती हूं। मेरे मुख से कभी अनुचित वचन न निकल जाय, इस बात को लेकर मैं सदैव सावधान रहती हूं। असभ्यतापूर्वक कहीं खड़ी नहीं होती हूं। निर्लज्ज होकर इधर-उधर देखने की प्रवृत्ति नहीं रखती हूं। जहां बैठना उचित नहीं है, वहां नहीं बैठती हूं। दुराचार से बचती हूं। चलना-फिरना सभ्यतापूर्वक हो इसका ख्याल रखती हूं। पतियों की मनोभावनाओं की सदैव रक्षा रखती हूं। देवता हो, मनुष्य हो, गंधर्व हो, युवक हो, बहुत सजधज कर हो, धनवान हो, सुंदर हो अथवा कैसा भी महान पुरुष हो, पांडवों के अलावा मेरा मन कहीं नहीं लगता।

पतियों और उनकी सेवा करने वालों को भोजन कराये बिना मैं स्वयं भोजन नहीं करती। पतियों को स्नान कराये बिना मैं स्वयं स्नान नहीं करती हूं। उनके शयन करने पर मैं स्वयं शयन करती हूं। मेरे पति खेत से, जंगल से, गांव से या कहीं से आते हैं, तो मैं उनका खड़ी होकर स्वागत करती हूं, उन्हें जल और आसन देती हूं। मैं घर-वस्त्र, बरतन साफ रखती हूं और शुद्ध स्वादिष्ट भोजन

बनाकर समयानुकूल सबको भोजन कराती हूं। मैं अपने मन–इंद्रियों का संयम रखकर घर में गुप्त रूप से अन्न एवं खाद्य पदार्थों का संग्रह रखती हूं। किसी के लिए तिरस्कार का वचन नहीं बोलती हूं। मैं दुष्ट स्त्रियों की संगत से सदैव दूर रहती हूं। आलस्य छोड़कर सदैव पतियों के अनुकूल बरताव करती हूं।

पति के हंसने के समय मैं हंसती हूं। इसके बाद मैं नहीं हंसती। द्वार पर जाकर बार–बार खड़ी होने की आदत नहीं रखती। गंदी जगहों में नहीं खड़ी होती और बगीचे में अकेली देर तक नहीं घूमती हूं। खराब स्वभाव के पुरुषों से बात नहीं करती। मन में असंतोष नहीं आने देती हूं। परायी चर्चा से दूर रहती हूं। पति के बिना अकेली कहीं रहना पसंद नहीं करती। पति कहीं अलग चले जाते हैं तब मैं कोई शृंगार नहीं करती, ब्रह्मचर्य का पालन करती हूं। जो खाद्य, पेय या पदार्थ मेरे पति नहीं पसंद करते, मैं भी उनसे दूर रहती हूं। मेरी सास ने मुझे परिवार के सेवा–धर्म का जो उपदेश दिया है, मैं उसका पालन करती हूं। मेरे पति कोमल स्वभाव के हैं, परंतु मैं उनसे डर रखती हूं। मैं पति को अपना देवता मानती हूं, आश्रय–स्थल मानती हूं। मैं अपनी सास कुंती देवी की जल, भोजन, वस्त्र आदि से सदैव सेवा करती हूं। मैं अपनी सास से बढ़कर किसी वस्तु का सेवन नहीं करती, उनकी कभी निंदा नहीं करती।

मैं घर की आमदनी–खर्च का ख्याल रखती हूं और नौकर, सेवक तथा आश्रयीजनों के भोजन, वस्त्र आदि की परवाह रखती हूं। इंद्रप्रस्थ में राज्यकाल में रहते हुए घर का पूरा भार मुझ पर रहता था, मैं उसको प्रसन्नतापूर्वक निभाती थी। मैं सेवा–कार्य में रात–दिन भूख–प्यास की परवाह किये बिना उत्साह से लगी रहती थी। मैं पतियों के सोने के बाद सोती हूं और उनके उठने के पहले उठ जाती हूं। सेवा, विनम्रता, मिष्ट वचन वशीकरण मंत्र हैं।

हे सत्यभामा! पति को अनुकूल बनाने की विधा है कि पति का स्वागत करे, सेवा करे, मीठे वचन बोले, उनकी कही हुई बात किसी से न कहे, उनके अनुकूल लोगों को आदर दे, उनके प्रतिकूल लोगों से उदास रहे, दूसरे पुरुषों के समीप प्रायः मौन रहे। प्रद्युम्न और साम्ब तुम्हारे पुत्र हैं, परंतु उनके पास भी तुम्हें एकांत में न बैठना चाहिए। सदाचारी नारियों से ही सखी भाव स्थापित करे। नशा करने वाली, क्रोधी, अधिक खाने वाली, चोरी की लत वाली, दुष्ट और चंचल स्वभाव की स्त्रियों से संबंध न जोड़े। "हे शीलवती! सुख से सुख कभी नहीं मिलता है, दुख से ही सुख मिलता हे– *सुखं सुखेनेह न जातु लभ्यं दुःखेन साध्वी लभते सुखानि* (वन पर्व ,)।" सेवा और संयम से स्वजनों को अनुकूल बनाया जा सकता है और स्वयं शांति से रहा जा सकता है।

इसके बाद श्रीकृष्ण सत्यभामा तथा स्वजनों के साथ द्वारका चले गये (अध्याय -)।

मीमांसा

ऊपर गृहिणी नारियों के लिए उत्तम उपदेश तो हैं ही, उनसे प्रेरणा लेकर सभी क्षेत्रों के नर-नारियों तथा गृहस्थ-विरक्त के लिए उपदेश हैं।

. कर्ण, शकुनि तथा सेना सहित दुर्योधन की घोष-यात्रा, द्वैतवन प्रस्थान

एक ब्राह्मण पांडवों से मिलकर राजा धृतराष्ट्र के पास गया और बताया कि पांडव तथा द्रौपदी किस तरह वन में दुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। यह सब सुन कर धृतराष्ट्र को कष्ट हुआ। वे अपने को धिक्कारने लगे और उन्हें अपनी गलती का अनुभव होने लगा। वे अपने को, शकुनि तथा दुर्योधन को धिक्कारने लगे। धृतराष्ट्र ने कहा-हवा स्वयं चलती है, गर्भिणी स्वयं समय से बच्चा पैदा करती है, दिन के बाद रात और रात के बाद दिन का आना स्वाभाविक है; इसी प्रकार अपने कर्मों का फल समय से भोगना पड़ता है, यह विश्वास हो जाय तो मनुष्य क्यों पाप करे? उपार्जित धन का सदुपयोग न किया जाय तो कच्चे घड़े में रखे हुए जल के चू कर बह जाने के समान धन स्वयं बह जायगा। कौरवों के गलत कर्मों का परिणाम आना है।

शकुनि उक्त बातों को सुन रहा था। उसने जाकर दुर्योधन और कर्ण को यह सब बताया; फिर कर्ण और शकुनि मिलकर दुर्योधन को उकसाने लगे कि आप अपनी रानियों के सहित वन में चलकर पांडवों और द्रौपदी की दुर्दशा को देखें। शत्रुओं के दुख को देखकर जो आनंद आता है वह धन, पुत्र और राज्य मिलने पर भी नहीं आता। तुम्हारी रानियां जब वस्त्र-अलंकारों से सजकर वन में चलेंगी, उनको देखकर वल्कल और मृगचर्म में लिपटी द्रौपदी को संताप होगा। तुम्हारे राजोचित ऐश्वर्य को देखकर पांडव पीड़ित होंगे। हम लोगों को उनका दुख देखकर आनंद आयेगा।

दुर्योधन ने कहा-पिता जी वहां जाने की आज्ञा नहीं देंगे। कर्ण ने कहा-मैंने युक्ति निकाली है। राजा धृतराष्ट्र से कहा जाय कि अपनी गायें द्वैतवन में ही रहती हैं। उन्हें देखने, गौओं और बछड़ों की गणना करने और आयु, रंग तथा जाति तथा नाम का ब्यौरा लिखने के लिए वहां जाना आवश्यक है। यह घोष-

यात्रा है। एक ग्वाले को सिखा–पढ़ा कर धृतराष्ट्र के पास भेजा गया। उसने यह सब बातें राजा से कहीं।

राजा धृतराष्ट्र ने रोका और कहा कि द्वैतवन में ही पांडव वनवास कर रहे हैं। वहां जाकर तुम लोग उनसे झगड़ा–टंटा कर सकते हो, तुम्हारे सैनिक वहां कुछ गलत कर सकते हैं। इसलिए वहां मत जाओ। शकुनि ने कहा–नरेश! हम लोग अपनी गायों को देखने तथा शिकार–सैर के लिए जायेंगे। हम लोग पांडवों के पास जायेंगे ही नहीं। इस प्रकार शकुनि की कूटनीति में पड़कर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को घोष–यात्रा के नाम पर द्वैतवन जाने की आज्ञा दे दी (अध्याय –)।

. दुर्योधन को गंधर्वों की कैद से अर्जुन का छुड़ाना

दुर्योधन सेना सहित द्वैतवन में जाकर पड़ाव डाल दिये। साथ में कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि के भी डेरे पड़ गये। गायें, बछड़े आदि सब गिने गये, लिखे गये। ये लोग शिकार करने लगे। एक दिन द्वैतवन नामक सरोवर के पास जा पहुंचे। उस सरोवर पर युधिष्ठिर एक दिन में संपन्न होने वाले यज्ञ का अनुष्ठान किये बैठे थे। उस सरोवर पर गंधर्वों का भी जमाव था। वर्चस्व तो वहां उन्हीं का था। दुर्योधन को उस सरोवर के पास खेलकूद का अखाड़ा बनाना था। उनके सिपाही जाकर उन्हें बताये कि सरोवर के द्वार पर गंधर्वों ने अड्डा जमा रखा है। वे भीतर घुसने ही नहीं देते हैं। दुर्योधन ने कुपित होकर कहा कि जाकर गंधर्वों को मार भगाओ। दुर्योधन के सिपाही जाकर गंधर्वों से बोले कि राजाधिराज दुर्योधन यहां क्रीडा–विहार करने आ रहे हैं। तुम लोग यहां से हट जाओ।

गंधर्व लोग जोर–जोर से हंसने लगे और उन्होंने कहा–दुर्योधन मूर्ख है। उसे तनिक भी होश–हवास नहीं जो वह गंधर्वों को बनिये की तरह आज्ञा दे रहा है कि यहां से दुकान हटा लो। दुर्योधन के सिपाही लौटकर उससे गंधर्वों की बातें बतायीं। दुर्योधन ने गंधर्वों पर हमला करने के लिए सेना लेकर प्रस्थान कर दिया। गंधर्वों और कौरवों में घमासान युद्ध हुआ। बहुत लड़कर कर्ण को युद्ध क्षेत्र से भागना पड़ा। दुर्योधन युद्ध में अड़ा रहा, परंतु, अंततः वह युद्ध में हार कर रथ से गिर पड़ा। गंधर्वों ने दुर्योधन, दुःशासन, उनकी स्त्रियों तथा बहुत–से योद्धाओं का अपहरण करके कैद कर लिया।

दुर्योधन के सैनिक पांडवों के पास जाकर गोहार मचाये कि हमारे राजा दुर्योधन कैद कर लिए गये हैं, उन्हें छुड़ाओ। भीम ने कहा–जो काम हमें करना

चाहिए उसे गंधर्वों ने कर दिया। कौरव करना चाहते थे और कुछ, और हो गया उलटा। हमने सुना है जो लोग असमर्थों को सताने चलते हैं, उन्हें दूसरे लोग ही रगड़ देते हैं। इस कहावत की चरितार्थता आज गंधर्वों ने कर दिखायी। हम वनवास में दुखी हैं, और दुर्योधन हमारा मजाक उड़ाने आया है। युधिष्ठिर ने भीम का विकृत स्वर सुनकर कहा–यह कड़वी बात कहने का समय नहीं है। इस समय कौरव भारी संकट में हैं। उनके आदमी शरण में आये हैं। कड़वी बात मत कहो। भाई-भाई में मतभेद होते रहते हैं। कभी वैर भी हो जाता है, परंतु इससे अपनापन नहीं जाता। श्रेष्ठ मनुष्य बाहरी लोगों द्वारा अपने कुल पर हुए आक्रमण को नहीं सह सकते। हमारे कुल की स्त्रियों का अपहरण हुआ है, वीरों का अपहरण हुआ है। शत्रु भी यदि कहता है "दौड़ो बचाओ" तो कौन श्रेष्ठ मनुष्य उसको बचाने नहीं दौड़ेगा? वरदान, राज्य-प्रदान और पुत्र प्राप्त कराने की अपेक्षा शत्रु का संकट से उद्धार करना ऊंचा है। मैं यज्ञ में न बैठा होता, तो स्वयं इस कार्य के लिए दौड़ पड़ता। तुम लोग जाओ। पहले गंधर्वों को समझा-बुझाकर दुर्योधन तथा कौरवों को छुड़ाओ। यदि न मानें, तो नरम युद्ध करके छुड़ाओ। यदि इसमें भी सफलता न दिखे तो सभी उपायों से कौरवों को छुड़ाओ।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अर्जुन खड़े हो गये और उन्होंने कौरवों को छुड़ाने की प्रतिज्ञा की। पांडवों और गंधर्वों में युद्ध छिड़ गया। अंततः अर्जुन से गंधर्व परास्त हुए और अर्जुन ने दुर्योधन तथा समस्त कौरवों को छुड़ाकर मुक्त कर लिया।

गंधर्वों के सरदार चित्रसेन ने अर्जुन से कहा–देवराज इंद्र को स्वर्ग में बैठे-बैठे मालूम हो गया था कि दुष्ट दुर्योधन और कर्ण द्वैतवन में जाकर पांडवों का तिरस्कार करेंगे। इसलिए उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि जाकर दुर्योधन को बांधकर यहां ले आओ। अर्जुन ने कहा–दुर्योधन हमारा भाई है। यदि आप हमारा प्रिय करना चाहते हैं तो इनको छोड़ दें। अंततः चित्रसेन गंधर्व तथा अर्जुन से मित्रता हो गयी। इसके बाद सबके सब युधिष्ठिर के यज्ञ मंडप में आये। दुर्योधन लज्जित हो हाथ जोड़कर युधिष्ठिर के सामने खड़ा था। युधिष्ठिर ने कहा–भैया! अब आगे ऐसे दुस्साहस का काम न करना। ऐसा काम करने वाला सुखी नहीं होता। भाई-बंधुओं के साथ घर जाओ। हम लोगों से वैमनस्य नहीं रखना (-)।

मीमांसा

उक्त घटना को लेखक ने इंद्र और स्वर्ग से जोड़कर पांडव पक्ष को उठाने की चेष्टा की है जो घोर कल्पित है और अज्ञान बढ़ाने वाली है।

. दुर्योधन का क्षोभ, आमरण अनशन की प्रतिज्ञा, फिर सामान्य होना

दुर्योधन युधिष्ठिर से विदा होकर चल दिया। वह लज्जित और दुखी था। कर्ण से मिलकर उसने कहा–मैं गंधर्वों द्वारा मार डाला गया होता तो मुझे संतोष मिलता। परंतु पांडवों द्वारा बचाये जाकर मैं लज्जित हूं। जब अर्जुन ने गंधर्वराज चित्रसेन से कहा–दुर्योधन तथा समस्त कौरवों को छोड़ दो, तब चित्रसेन ने अर्जुन से यह बात कह दी, जो हमारी मंसा थी, कि "ये पांडव तथा द्रौपदी की दुर्दशा देखकर आनंद लेने आये हैं।" जिस समय गंधर्व ने उपर्युक्त बात कही, उस समय मैं लज्जा से गड़ गया। मेरा मन हुआ कि यदि धरती फटती, तो मैं उसमें समा जाता।

दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि दुःशासन को राजा बना दो, मैं आमरण अनशन करके शरीर छोड़ दूंगा। दुर्योधन ने दुःशासन को बुलाकर कहा–मैं तुम्हें राजा बनाता हूं। तुम राज्य का शासन करो। मैं प्राण त्याग दूंगा। दुःशासन उक्त बातें सुनकर दुर्योधन के चरणों में लोट–पोट गया और कहा–नहीं, ऐसा नहीं होगा। चाहे धरती फट जाय, आकाश के टुकड़े हो जायं, सूर्य अपना तेज और चंद्रमा अपनी शीतलता छोड़ दे, परंतु मैं आपके बिना नहीं रहूंगा। दुःशासन दुर्योधन के चरणों में पड़ा फूट–फूट कर रो रहा था।

कर्ण ने आकर दोनों को झिड़कते हुए समझाना शुरू किया–तुम दोनों गंवारों की तरह अज्ञानवश शोक करते हो। शोक करने से संकट नहीं टलता, अपितु गहराता है। दुर्योधन! पांडवों ने गंधर्वों से तुम्हें छुड़ाकर अपना कर्तव्य पालन ही किया है। वे तुम्हारे राज्य में रहकर खाते–जीते हैं, तो उन्हें तुम्हारी सेवा करनी ही चाहिए। पांडव तुम्हारे गुलाम पहले हो चुके हैं, तो उन्हें तुम्हारी सेवा करनी ही चाहिए। कभी–कभी राजा युद्ध–काल में अपने शत्रु राजा द्वारा कैद कर लिया जाता है, तो विजित राजा का सैनिक उसे छुड़ा लेता है। कुल मिलाकर पांडवों ने तुम्हारा उपकार नहीं किया है, अपितु अपना कर्तव्य पालन किया है। देखो, पांडव कितने धैर्यवान हैं, उन्होंने आमरण अनशन नहीं किया। यदि तुम इस हठ को नहीं छोड़ोगे तो मैं तुम्हारे चरणों की सेवा में यहीं रह जाऊंगा। मैं तुमसे अलग रहकर जिंदा नहीं रहना चाहता। यदि तुम आमरण अनशन में बैठोगे तो तुम राजाओं के बीच में उपहास के पात्र बन जाओगे। कर्ण के इतना कहने पर भी दुर्योधन अपने निश्चय से टस–से–मस नहीं हुआ।

. दुर्योधन का क्षोभ, आमरण अनशन की प्रतिज्ञा, फिर सामान्य होना

शकुनि ने दुर्योधन से कहा–पांडवों ने तुम्हारा सत्कार किया है, तो तुम शोक करते हो। यदि वे तुम्हारा तिरस्कार किये होते तो पता नहीं तुम्हारी क्या दशा होती? जहां तुम्हें हर्षित होना चाहिए और पांडवों का सत्कार करना चाहिए वहां तुम शोक कर रहे हो। यह तुम्हारा व्यवहार उलटा है। तुम मेरी बात मानो। तुम पांडवों के साथ भाईचारे का व्यवहार करके उनका राज्य उन्हें दे दो। इससे तुम्हें शांति मिलेगी।

दुर्योधन ने कहा–"मुझे धर्म, धन, सुख, ऐश्वर्य, शासन, भोग कुछ नहीं चाहिए। तुम लोग मेरे निश्चय में बाधा न डालो। चले जाओ। मेरा आमरण अनशन करके मृत्यु प्राप्त करना अटल निश्चय है।" दुर्योधन का यह अटल निश्चय जानकर पातालवासी दैत्यों ने सोचा कि यदि दुर्योधन की मृत्यु हो गयी, तो हम दैत्यों का पक्ष दुर्बल हो जायेगा। इसलिए उन्होंने यज्ञ करके कृत्या पैदा की। कृत्या (देवी) ने दुर्योधन के पास आकर उसे एक मुहूर्त्त में पाताल में दैत्यों के पास पहुंचा दिया; फिर दैत्यों ने दुर्योधन को समझाया कि तुम घबराओ मत, जान मत दो, किंतु साहस के साथ अर्जुन से लड़कर उन्हें मारो। हम दैत्य लोग भीष्म, द्रोण आदि की देह में प्रविष्ट होकर उन्हें युद्ध के लिए मतवाला बना देंगे। इसलिए वे पांडव-पक्ष को काट डालेंगे। तुम्हारी विजय होगी। तुम पृथ्वी का निष्कंटक राज्य भोगोगे।

दुर्योधन ने दैत्यों की उक्त बातें सुनकर संतोष प्रकट किया और मरने का निश्चय छोड़ दिया। इसके बाद कृत्या ने दुर्योधन को लाकर यथास्थान छोड़ दिया और चली गयी। "दुर्योधन ने इन सब बातों को स्वप्न समझा–*दुर्योधनः इदम् सर्वम् स्वप्नभूतम् चिन्तयत* (वन पर्व ,)।" दानवों ने कृत्या द्वारा दुर्योधन को रात में बुलाकर जो कुछ कहा था, उन्हें दुर्योधन ने किसी से नहीं बताया। इसके बाद दुर्योधन पांडवों को मारने के लिए पुनः गुर्राने लगा (अध्याय -)।

मीमांसा

पहले के लेखकों में झूठी दैवी कल्पना का बड़ा कबाड़ रहता था। वे इस संदर्भ में अर्जुन-पक्ष को इंद्रादि देवताओं से जोड़ते हैं और दुर्योधन-पक्ष को दैत्यों-दानवों से जोड़ते हैं। यदि देवता-दानव नाम से थे तो वे मानव ही थे, और दोनों में अच्छे-बुरे थे, जो स्वाभाविक है। यज्ञ से कृत्या (देवी) पैदा होती है यह धारणा निरी कल्पना एवं झूठी है। मानव का प्रेम और वैर सब मानवीय है। अतिमानवीय और अलौकिक बातें झूठी हैं, गल्प हैं। दुर्योधन के लिए तो कहा ही गया कि उसने कृत्या और दैत्य वाली बात को स्वप्न समझा और उसे

किसी से नहीं कहा। परंतु इस संदर्भ के लेखक से तो जरूर कहा होगा, तभी तो वह महाभारत में लिख मारा।

. भीष्म की दुर्योधन को सलाह तथा कर्ण की दिग्विजय

भीष्म ने दुर्योधन से कहा–तुम्हारा द्वैतवन जाना मुझे अच्छा नहीं लगा था और तुमने वहां जो कुछ किया वह भी अच्छा नहीं हुआ। तुम्हें पांडवों ने संकट से छुड़ाया है, क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं लगती? बड़ा वीर बनने वाला कर्ण गंधर्वों से पीठ दिखाकर भाग निकला। तुम्हें पांडवों से मेल-मिलाप कर लेना चाहिए।

भीष्म की उक्त बातें सुनकर दुर्योधन हंसते हुए शकुनि के साथ दूसरी तरफ चला गया। बेचारे भीष्म अपने पौत्र द्वारा तिरस्कृत होकर लज्जित हो गये और अपने निवास स्थान को चले गये। भीष्म के चले जाने पर दुर्योधन पुनः वहां लौटकर अपने मंत्रियों से मंत्रणा करने लगा–क्या करने में हमारा लाभ है, क्या करना शेष है, कैसे करने से परिणाम अच्छा होगा, क्या करने में हमारा हित है।

कर्ण ने कहा–भीष्म सदैव हमारी निंदा और पांडवों की प्रशंसा करते हैं। वे हम लोगों से द्वेष रखते हैं। मैं भीष्म की बातों को सह नहीं सकता। राजा दुर्योधन! तुम सेवक, सेना तथा सवारियों के साथ दिग्विजय करने की आज्ञा दो। मैं पूरी पृथ्वी को जीत लूंगा। फिर भीष्म मेरा बल देख लेंगे। तुम्हारी विजय पांडवों पर निश्चित है। दुर्योधन खुश हो गया और कर्ण को दिग्विजय में जाने के लिए सारे प्रबंध की आज्ञा दे दी।

कर्ण सेना लेकर पहले पांचाल-नरेश द्रुपद को जीतकर उनसे कर लिया। फिर उत्तर दिशा में अंग, बंग, कलिंग, शुंडिक, मिथिला, मगध, दक्षिणी भारत, पश्चिमी भारत, पूर्वी भारत के सभी राजाओं को जीतकर और सबसे कर (टैक्स) के रूप सोना, चांदी, रत्न आदि बटोरकर हस्तिनापुर आकर राजा धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शकुनि आदि से मिला। पूरे कौरवों को सनक सवार हो गयी कि अब पांडवों की पराजय पक्की है। (अध्याय –)।

मीमांसा

किसी उत्साही लेखक ने कर्ण के माथे सेहरा बांधने के लिए वन पर्व का दौ सौ तिरपन-चौवन (–)वां अध्याय लिख डाला है जिसमें कुल छत्तीस ( ) श्लोकों में हिमालय से लेकर केरल तथा बंगाल से लेकर ईरान तक कर्ण

की दिग्विजय करवा दी है। लेखक ने बृहत्तर भारत पर दिग्विजय करना गुल्ली-डंडा का खेल बना दिया है।

. दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ तथा कर्ण की अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा

दुर्योधन ने राजसूय यज्ञ करना चाहा, क्योंकि वह पहले युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ बड़े धूमधाम से होता देख चुका था; किंतु ब्राह्मणों ने कहा कि बड़े भाई युधिष्ठिर तथा पिता धृतराष्ट्र के होते हुए तुम्हारा राजसूय यज्ञ करना उचित नहीं है, अपितु राजसूय यज्ञ के ही टक्कर का वैष्णव यज्ञ है, वह तुम्हारे लिए अधिक फलदायी है। उसके लिए यह उपाय है कि तुम अपने अधीन राजाओं से कर के रूप में स्वर्ण लो और उससे एक स्वर्ण-हल बनवाओ जिससे यज्ञ-भूमि शोधी जाय। वैष्णव यज्ञ बिना किसी से झगड़ा-लड़ाई किए निर्विघ्न समाप्त होता है। अंततः वैष्णव यज्ञ पर सबकी सहमति हुई और निमंत्रण बांटा जाने लगा। दुर्योधन ने एक ब्राह्मण को द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास भेजा कि उनको यज्ञ में पधारने के लिए निमंत्रण दे आओ। ब्राह्मण वहां गया और युधिष्ठिर को निमंत्रण दिया। युधिष्ठिर ने कहा—सौभाग्य की बात है कि पूर्वजों की कीर्ति बढ़ाने वाला यज्ञ दुर्योधन कर रहे हैं। हम भी उसमें चलते, परंतु अभी संभव नहीं है। तेरह वर्ष व्यतीत करने के बाद ही हम वहां आ सकते हैं। भीम ने ब्राह्मण से दुर्योधन के लिए कटु वचन कहा, किंतु अन्य पांडवों ने कुछ नहीं कहा।

यज्ञ पूरा हुआ। ब्राह्मणों को खूब दक्षिणा दी गयी। आगंतुकों को छक कर खिलाया-पिलाया गया। भीड़ की बात विचित्र है। कोई कहता कि यह यज्ञ युधिष्ठिर के यज्ञ के समान नहीं है, कोई कहता कि उसके सोलहवें अंश के भी समान नहीं है। कोई कहता यह यज्ञ पिछले सभी यज्ञों से बढ़कर है। कर्ण ने तो उत्साहित होकर दुर्योधन से कहा—जब तुम्हारे द्वारा पांडव युद्ध में मारे जायेंगे, उस समय तुम्हारे राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर मैं पुनः तुम्हारा अभिनंदन करूंगा। दुर्योधन हर्षित होकर कर्ण को छाती से लगा लिया। उसने कहा—कब वह समय आयेगा जब मैं समस्त पांडवों को मार कर प्रचुर धन से राजसूय यज्ञ करूंगा। कर्ण ने व्रत लिया—जब तक मैं अर्जुन को मार नहीं डालूंगा तब तक किसी से अपने पैर नहीं धुलवाऊंगा, केवल जल से उत्पन्न खाद्य नहीं खाऊंगा, और असुर व्रत नहीं धारण करूंगा, और किसी के कुछ मांगने पर 'ना' नहीं

कहूंगा–अवश्य दूंगा। इस प्रकार कर्ण द्वारा अर्जुन–वध की प्रतिज्ञा करने पर धृतराष्ट्र–पुत्रों ने हर्षनाद किया। कौरव समझने लगे कि अब पांडवों की पराजय निश्चित है।

गुप्तचरों से उपर्युक्त समाचार सुनकर युधिष्ठिर सहित सभी पांडव चिंतित हो गये। उनके मन में वही बात निरंतर घूमती रहती थी। युधिष्ठिर ने सोचा कि इस पशुओं और सर्पों से भरे द्वैतवन को छोड़कर कहीं अलग चलना चाहिए। इधर दुर्योधन अपने अधीन राजाओं के साथ उत्तम व्यवहार करता था, ब्राह्मणों को खूब दान देता था और भाई–बंधु तथा प्रजा को उदारता से पालता–पोषता था। धन के दो ही फल हैं–दान और भोग–*दत्त–भुक्त–फलम् धनम्* (वन पर्व ,)। (अध्याय –)।

मीमांसा

विशाल प्रतिभा के धनी लोग भी कैसे–कैसे धोखे में होते हैं। दुर्योधन और कर्ण जैसे लोग भी लोभ, मोह और क्रोध के अधीन होकर कैसे बचकानापन की बातें करते हैं। जो माया किसी के साथ नहीं रह जाती है उसी के लिए सब कटते–मरते हैं।

महाभारत में पांचरात्र वैष्णवों की बहुत कुछ मिलावट है। पांचरात्र वैष्णवों का यज्ञ अहिंसक होता था। उसी की छाप ऊपर दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ है जो पीछे का मिलाया है।

. युधिष्ठिर का द्रावक स्वप्न, मुद्गल की उच्च दृष्टि

पांडव द्वैतवन में रह रहे थे। एक रात को युधिष्ठिर ने स्वप्न देखा कि बनैले पशु थरथर कांपते हुए उनके सामने खड़े थे। युधिष्ठिर ने उनसे पूछा–आप लोग कौन हैं, आपकी क्या इच्छा है, क्या कहना चाहते हैं? पशुओं ने कहा–आप लोगों के नित्य शिकार करने से हमारी संख्या समाप्त हो चली है। अब हम केवल बीज रूप में रह गये हैं। यदि आप हम पर कृपाकर यहां से अलग चले जायं, तो हम पुनः बढ़ सकते हैं। उक्त बातें सुनकर युधिष्ठिर को बड़ी पीड़ा हुई। उन्होंने जागने पर अपने भाइयों को स्वप्न की बात बतायी और पांडव द्वैतवन छोड़कर रेगिस्तान के तटवर्ती क्षेत्र काम्यक वन में चले गये और आश्रम बनाकर रहने लगे।

युधिष्ठिर के मन में यह सदा चुभता रहता था कि भाइयों और द्रौपदी को

जो यह महान दुख भोगना पड़ रहा है वह मेरी खोटी करनी का फल है। मेरे जुआड़ीपन ने यह सारा दुख लाया है। इसी बीच एक दिन वेदव्यास आ गये। वे अपने पौत्रों को वनवास के कष्ट से दुर्बल देखकर द्रवित हो गये और आंखों से आंसू बहाते हुए बोले–जीवन में सुख और दुख दोनों आते हैं। ज्ञानवान मनुष्य सब कुछ का निर्माण-विनाश देखता है, इसलिए वह हर्ष और शोक नहीं करता। तप से ही शांति मिलती है। सत्य, सरलता, अक्रोध, दान, संयम, मनोनिग्रह, पर-दोष-दर्शन का त्याग, अहिंसा, बाहर-भीतर की शुचिता, पूरे शरीर पर नियंत्रण, इन सद्गुणों का आचरण करना तप है। जो दूसरों के दोष नहीं देखता तथा क्रोध से रहित रहता है वह शांति पाता है।

युधिष्ठिर ने पूछा–भगवन! दान और तपस्या दोनों में श्रेष्ठ कौन है? वेदव्यास ने कहा–दान करना बड़ा कठिन काम है, क्योंकि धन बड़ी कठिनाई से मिलता है और दान में उसका त्याग करना पड़ता है। मैं एक उपाख्यान सुनाऊं। कुरुक्षेत्र में मुद्गल नाम के एक ऋषि रहते थे। वे परिवार सहित थे। वे शिलवृत्ति तथा उञ्छवृत्ति से रहते थे। *"उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।"* अर्थात खेत कट जाने तथा बाजार उठ जाने पर वहां के गिरे हुए अन्न के दानों को बटोर लाना उञ्छवृत्ति है; और खेत कट जाने पर गिरे हुए अन्न की बालें बीनकर इकट्ठा करना शिलवृत्ति है। कणश का अर्थ है दाना, अन्न का दाना और कणिश का अर्थ है अन्न की बालें।

मुद्गल पंद्रह दिन में एक द्रोण (चौदह किलो) अन्न उञ्छवृत्ति तथा शिलवृत्ति से बटोरते थे। उसी से अपने और अपनों का गुजर करते थे तथा अतिथियों की सेवा करते थे। दुर्वासा ऋषि भूखे-प्यासे आ गये और इनके सारे भोजन को खा गये। इसी प्रकार छह बार आकर इनके सारे भोजन को साफ कर गये। मुद्गल सपरिवार स्वयं कष्ट में बिताकर दुर्वासा को खिलाता रहा। इससे प्रसन्न होकर देवदूत स्वर्ग से विमान लेकर आये और वे मुद्गल से प्रार्थना करने लगे कि आपके दान के फल में आपको स्वर्ग की प्राप्ति हुई है। कृपया आप आयें, विमान पर बैठें और स्वर्ग चलें।

मुद्गल ने देवदूत से पूछा–स्वर्ग के गुण क्या हैं, और दोष क्या हैं? यह जान लें तब निर्णय लें कि वहां चलेंगे या नहीं। देवदूत ने कहा–स्वर्ग बड़ा स्वच्छ है। वहां कूड़ा-कचड़ा नहीं रहता। वहां बड़े-बड़े भव्य महल, सरोवर, बाग और विहार के स्थान होते हैं। वहां भूख-प्यास नहीं लगती, गरमी-जाड़े का कष्ट नहीं होता। वहां पसीना नहीं आता, टट्टी-पेशाब नहीं होती, थकावट तथा बुढ़ापा नहीं आते। वहां का शरीर प्रकाशमय होता है। स्वर्ग का दोष यह है कि

वहां कर्मभूमिका नहीं है। वहां नया कर्म नहीं कर सकते। वहां केवल भोग–भूमिका है। इस धरती पर जितने शुभकर्म कर लिए हैं, वहां जाने पर जब उनके फल भोगकर समाप्त होते हैं, तब स्वर्गवासी वहां से नीचे गिरा दिये जाते हैं। तब उनको बड़ा दुख होता है। मुद्‌गल ने कहा–कृपया आप अपना विमान लेकर स्वर्ग लोक लौट जायं, मैं स्वर्ग नहीं जाना चाहता। आपको नमस्कार है। स्वर्ग तथा वहां का सुख महान दोषों से भरे हैं, इसलिए मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है। स्वर्ग से पतन होने के बाद तो मनुष्यों को महान अनुताप एवं दुख होता है और वे पुनः इसी मृत्युलोक के कूड़े–कचड़े में विचरते रहते हैं, इसलिए मुझे स्वर्ग जाने की किंचित इच्छा नहीं है।

मुद्‌गल ने विचार किया कि जिसमें कभी शोक नहीं, व्यथा नहीं, विचलन नहीं, मैं केवल उसी अचल–धाम का अनुसंधान करूंगा। मुद्‌गल की दृष्टि में स्तुति–निंदा समान हो गयीं, वे मिट्टी के ढेले, पत्थर और स्वर्ण को समान समझने लगे। "वे ध्यान योग द्वारा अंतर्मुखता का अभ्यास करने लगे और ध्यान द्वारा परम वैराग्य का बल पाकर और सर्वोच्च आत्मबोध में स्थिर होकर शाश्वत निर्वाण रूप परम सिद्धि को प्राप्त हो गये।"–

ध्यानयोगाद् बलं लब्ध्वा प्राप्य बुद्धिमनुत्तमाम्।
जगाम शाश्वतीं सिद्धिं परां निर्वाणलक्षणाम्

(वन पर्व, ,)
(अध्याय –)।

मीमांसा

युधिष्ठिर दलबल सहित वन में रहते थे; इसलिए उनके आहार संग्रह का भी बड़ा स्तर होता था। रोज–रोज शिकार करते–करते वन के पशु समाप्त हो चले थे; यह बात उनके मन में खटकती होगी, वही स्वप्न में खड़ा हो गया। अपने मन की भावना ही स्वप्न बनती है। स्वप्न बाहर से नहीं आता। वस्तुतः लेखक ने पांडवों के निर्दय शिकार को विदग्धात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

स्वर्ग कहीं नहीं है। वह केवल काल्पनिक है। इस जीवन की अपूर्ण कामनाओं की भड़ास स्वर्ग है। मनुष्य जो इस जीवन में नहीं पूर्ण कर पाता है उसे वह मन के कल्पनाजनित स्वर्ग में पूरा करना चाहता है जो केवल मन का लड्डू है। वस्तुतः सब वासना, कामना और अहंकार त्यागकर आत्मसंतुष्टि ही अक्षय–सुख है।

ध्यान, सिद्धि, बल और निर्वाण बौद्ध महायान में अधिक प्रचलित थे। इन

शब्दों का यहां अपने ढंग से प्रयोग किया गया है, अतएव यह प्रसंग गुप्तकाल की देन है, ऐसी वासुदेवशरण अग्रवाल की मान्यता है। वे लिखते हैं–"यह छोटी-सी कथा गुप्तकाल की भागवत मनोवृत्ति का परिचायक है। ध्यान, ऋद्धि, बल, निर्वाण महायान के इन पारिभाषिक शब्दों को भागवतों ने अपने ढंग से अपना लिया है।"

. दुर्वासा, दुर्योधन, द्रौपदी और दीनदयाल श्रीकृष्ण

स्वभाव से ही क्रोधी ऋषि दुर्वासा दस हजार शिष्यों के साथ दुर्योधन के यहां पहुंच गये। दुर्योधन ने उनका सत्कार किया और उनके क्रोधी स्वभाव के कारण डर कर सेवा में लगा रहा। दुर्वासा कई दिनों तक डटे रहे। दुर्वासा कहते हम स्नान करने जा रहे हैं, अभी आते हैं, भोजन तैयार रखो। बहुत देर से आते और कहते 'नहीं खायेंगे।' कभी आधी रात को कहते हम लोगों को अभी भोजन कराओ। भोजन बन जाने पर उसकी निंदा करते और नहीं खाते। दुर्योधन दुर्वासा का सारा उपद्रव निर्विकार भाव से सहता रहा; अतएव दुर्वासा ने प्रसन्न होकर उससे वर मांगने को कहा।

दुर्योधन ने अपने साथियों से सलाह लेकर दुर्वासा से वर मांगा–"भगवन! आपने जैसे मुझे अपनी सेवा का अवसर दिया, वैसे काम्यक वन में रहने वाले पांडवों को भी अवसर दीजिए। जब द्रौपदी ने सबको भोजन कराकर स्वयं कर लिया हो, तब उनके यहां जाकर भोजन मांगिए।"

इसमें दुर्योधन का मंतव्य था कि द्रौपदी तथा पांडव परेशान हों और दुर्वासा उन्हें शाप दें आदि। दुर्वासा पांडवों के पास दस हजार शिष्यों के साथ पहुंच गये। पांडव भोजन करके विश्राम कर रहे थे। दुर्वासा ने कहा–हम दस हजार शिष्यों के साथ आये हैं, स्नान करने जा रहे हैं। वहां से आने के बाद हमें तुरंत भोजन मिलना चाहिए। द्रौपदी चिंतित हुई। अंततः उसने श्रीकृष्ण की याद की। श्रीकृष्ण द्वारका से रुक्मिणी को सोती हुई छोड़कर काम्यक वन में आ पहुंचे और द्रौपदी की बटलोई उठाई और उसके गले में चिपकी हुई सब्जी का टुकड़ा उठाकर खा लिया और कहा दुर्वासा तथा उनके शिष्यों को बुलाओ और वे डटकर भोजन करें। परंतु गजब हो गया कि सब ऋषियों को खट्टी डकार आने

. **भारत सावित्री, पृष्ठ**

लगी सबके पेट में गले तक भोजन भरा हुआ लगा। अतएव सब चुपके से

अपनी इज्जत बचाकर भाग खड़े हुए (अध्याय –)।

मीमांसा

उक्त गल्प दुर्योधन की दुष्टता, द्रौपदी की भक्ति तथा श्रीकृष्ण की महिमा उभाड़ने के लिए गढ़ा गया अतिशयोक्तिपूर्ण है। यह सब सिद्ध करने के लिए दुर्वासा को क्रोध, उन्माद तथा उच्छृंखलता का जामा पहनाकर उन्हें तमाशा बनाया गया है।

दुर्वासा का दस हजार शिष्य लेकर पहुंचना, उन्मादी व्यवहार करना, कृष्ण का द्वारका से आकर साग का टुकड़ा खाकर ऋषियों के पेट को ठसाठस भर देना केवल कवि कल्पना है। अतएव प्रकृति–विरुद्ध होने से असत्य है।

. जयद्रथ द्वारा द्रौपदीहरण और निवारण

जयद्रथ सिंध देश का राजा था। इसको सौवीर–नरेश भी कहा जाता था; क्योंकि सिंध नदी का सौवीर एक प्रदेश था। जयद्रथ धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला का पति होने से धृतराष्ट्र का दामाद था। जयद्रथ नये विवाह की इच्छा से शाल्व देश जा रहा था। काम्यक वन होकर गुजर रहा था। पांडवों के आश्रम के सामने आने पर उसके द्वार पर द्रौपदी को खड़ी हुई देखा और वह मोहित होकर व्याकुल हो गया। उसने अपने साथी मित्र राजा कोटिकास्य को भेजा कि पता लगाओ यह कौन स्त्री है। यदि यह मेरी पत्नी बन जाय तो दूसरी स्त्री की आवश्यकता नहीं है। कोटिकास्य गया। पांडव शिकार में गये थे। धौम्य ऋषि द्रौपदी की रक्षा में थे। कोटिकास्य ने द्रौपदी से बात करके जयद्रथ को बताया कि यह पांडवों की पत्नी द्रौपदी है।

जयद्रथ ने कहा–मैं तो द्रौपदी पर मोहित हूं। कोटिकास्य ने कहा–द्रौपदी पांडवों को समर्पित है। तुम उसके लिए अन्यथा बात मत करो। तुम उससे मिलकर सौवीर की राह पकड़ो। परंतु जयद्रथ मोहमूढ़ हो गया था। वह पांडवों के आश्रम पर जाकर द्रौपदी को समझा–बुझाकर पत्नी बनाना चाहा। जब यह संभव नहीं हुआ, तब द्रौपदी को बलपूर्वक रथ पर बैठा कर भाग निकला। धौम्य ऋषि दौड़े, पांडव आ गये। अंततः द्रौपदी को जयद्रथ के पंजे से छुड़ाकर आश्रम पर ले आये, और जयद्रथ को पीटकर कर छोड़ दिये।

इसके बाद जयद्रथ ने गंगाद्वार (हरद्वार) में जाकर तप द्वारा शंकर जी को

प्रसन्न किया और उनसे वर मागा कि मैं "रथ सहित पांचों पांडवों को युद्ध में जीत लूं।" महादेव ने कहा–यह असंभव है। तुम इतना ही कर सकते हो कि एक दिन अर्जुन के अलावा चार पांडवों को युद्ध में आगे बढ़ने से रोक दोगे। फिर तो आगे महादेव द्वारा अर्जुन और श्रीकृष्ण की करीब पचास श्लोकों में अपार महिमा गायी गयी है (अध्याय –)।

मीमांसा

बहुत राजे–महाराजे विलासी और भ्रष्ट होते थे। उसी का एक रूप जयद्रथ है। पौराणिक कथाओं में हर जगह विष्णु, शिव, इंद्र आदि देवताओं को खुश कर उनसे सारी मनोकामनाओं को पूर्ण करने की रस्म थी, जो केवल कथा–वार्ता है। पांचरात्र वैष्णव श्रीकृष्ण–भक्त थे ही जिनका प्रभाव महाभारत पर व्याप्त है; अतएव अर्जुन सहित श्रीकृष्ण पर बढ़ा–चढ़ा कर लिखने की उनकी प्रवृत्ति थी। यथार्थता है मानव की दुर्बलता और सद्‌गुण। वह दुर्बलता छोड़कर और सद्‌गुण ग्रहण कर सुखी हो सकता है।

. रामोपाख्यान

वन पर्व में दो सौ तिहत्तर ( )वें अध्याय से लेकर दौ सौ इक्यानबे ( )वें–उन्नीस ( ) अध्यायों और सात सौ ( ) से अधिक श्लोकों में श्रीराम की कथा आयी है। युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से पूछा–द्रौपदी जैसी पतिव्रता स्त्री का कोई अपहरण कर लेगा, ऐसा मैंने कभी सोचा नहीं था। सच है, काल, दैव (प्रारब्ध) और भवितव्यता, इन्हें कोई टाल नहीं सकता। मुनिश्रेष्ठ! क्या मेरे जैसा अभागा और कोई हुआ है, जिसका राज्य से निष्कासन हुआ हो, जिसकी पत्नी का अपहरण हुआ हो?

उक्त प्रश्न पर मार्कण्डेय द्वारा पूरी रामकथा संक्षेप में कही गयी है जो लगभग वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। मार्कण्डेय ने कहा–श्रीराम चौदह वर्षों के लिए राज्य से निकाल दिये गये। उनकी पत्नी को बलवान राजा रावण हर ले गया। इसको लेकर घोर युद्ध हुआ। अंत में श्रीराम रावण पर विजय कर सीता को छुड़ा लाये और अयोध्या में राजगद्दी पर बैठे तथा प्रजा पालन किये और गोमती तट पर दस अश्वमेध यज्ञ किये।

मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा–श्रीराम के दुख के सामने तुम्हारा दुख तो

अणुमात्र भी नहीं है। तुम क्षत्रिय हो, शोक न करो। तुम उस मार्ग पर चलने वाले हो जिस पर अपने बाहुबल से चला जाता है। देव तथा असुर दोनों क्षत्रिय धर्म पर चले हैं। श्रीराम के सहायक लक्ष्मण के अलावा कोई स्वजन नहीं था; तुम्हारे साथ तो चार वीर भाई और सगे-संबंधी हैं (अध्याय -)।

. सावित्री और सत्यवान

युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से कहा–मुझे द्रौपदी के लिए जितना शोक है उतना न अपने लिए है, न भाइयों के लिए है और न राज्य छिन जाने के लिए है। क्या आपने द्रौपदी जैसी पतिव्रता नारी को कभी देखा या सुना है? मार्कण्डेय ने कहा–अश्वपति नाम के एक राजा थे जो मद्रदेश में निवास करते थे। वे संतान-हीन थे। उन्होंने अठारह वर्षों तक संयमपूर्वक तप किया। सावित्री देवी उन पर प्रसन्न हुईं। उन्होंने राजा अश्वपति से वर मांगने के लिए कहा। राजा ने वर मांगा कि मुझे वंश चलाने वाले बहुत-से पुत्र प्राप्त हों। सावित्री ने कहा–तुम्हारी यह मनसा जानकर मैंने पहले ही ब्रह्माजी से निवेदन किया था। उनकी कृपा से तुम्हें एक तेजस्वी कन्या प्राप्त होगी। इसके बाद तुम्हें इस संबंध में अन्य कुछ नहीं कहना चाहिए। राजा अश्वपति ने कहा–'बहुत अच्छा।'

राजा अश्वपति की बड़ी रानी को कुछ दिन में गर्भ ठहरा और समय आने पर एक तेजस्वी पुत्री पैदा हुई। राजा अश्वपति और पुरोहित ब्राह्मणों ने उसका नाम 'सावित्री' ही रखा। कुछ वर्षों में वह युवती हो गयी; किंतु उसके तेज से किसी राजा की हिम्मत नहीं हुई कि उसे पत्नी बनाने के लिए उसकी मांग करे। एक दिन राजा ने कहा–बेटी! तू स्वयं अपना वर खोज ले। मैं विचारकर उसके साथ तेरा विवाह कर दूंगा। एक पर्व के दिन सावित्री पिता के बूढ़े मंत्रियों के साथ तपोवन में गयी और अनेक तीर्थों में घूमती रही।

एक दिन राजा अश्वपति के पास नारद बैठे थे। उसी समय सावित्री भ्रमण करके आ गयी। नारद ने सावित्री को देखकर राजा से कहा–यह पुत्री तो युवती हो गयी है। आपको चाहिए कि एक योग्य वर से इसका विवाह कर दें। राजा ने उन्हें बताया–मैंने इसे इसी कार्य के लिए भेजा था। यह अभी-अभी यहां आयी है। इसने अपने पति के लिए जिसे वरण किया हो, इसी के मुख से सुनिये।

सावित्री ने कहा–शाल्व देश में द्युमत्सेन नाम के राजा राज्य करते थे। वे पीछे अंधे हो गये। पड़ोसी राजा ने उन पर हमला करके उनका राज्य छीन

लिया। राजा द्युमत्सेन अपनी पत्नी तथा पुत्र को लेकर वन में चले आये। वे वहां व्रत और तपस्यापूर्वक रहने लगे। उनके पुत्र का नाम है सत्यवान। मैंने उसी को अपना पति चुना है। वह युवक सदा सत्य बोलता है, इसलिए उसे लोग सत्यवान कहते हैं।

नारद ने कहा–सत्यवान सर्व सद्‌गुण सम्पन्न है, परन्तु वह आज से लेकर एक वर्ष पूर्ण होने तक मर जायगा। राजा ने सावित्री से कहा–तू पुनः यात्रा कर और दूसरा वर चुन! क्योंकि सत्यवान का सारा गुण मृत्यु से दबा है। नारद जी कहते हैं कि वह एक ही वर्ष में मर जायगा। सावित्री ने कहा–भाइयों में धन का बंटवारा एक ही बार होता है, श्रेष्ठ दाता एक ही बार कहता है 'मैं दूंगा' और देता है, इसी प्रकार वर एक ही बार चुना जाता है। ये तीनों ही बातें एक ही बार होती हैं। सत्यवान गुणवान हो या गुणहीन, अल्पायु हो या दीर्घायु, मैंने उसे अपना पति चुन लिया है। अब दूसरा वर नहीं चुन सकती। पहले मन से निश्चय, फिर वाणी से कथन, उसके बाद कार्य रूप में परिणत किया जाता है। अतएव इसके विषय में मेरा मन प्रमाण है। उक्त बातें सुनकर राजा और नारद प्रसन्न हुए।

राजा अश्वपति विवाह-सामग्री, पुरोहित, स्वजन आदि को लेकर राजर्षि द्युमत्सेन के पास वन में पहुंचे। वे एक शालवृक्ष के नीचे कुश की चटाई पर बैठे थे। दोनों में दण्ड-प्रणाम हुआ। राजा अश्वपति अपनी पुत्री सावित्री का विवाह सत्यवान से करके तथा उचित दहेज देकर अपने राज्य में आ गये। पिता के चले जाने पर सावित्री ने अपने आभूषण और राजशाही वस्त्र उतार दिये और वनवासियों के वल्कल तथा गेरुवे वस्त्र पहन लिए। सावित्री ने सेवा, गुण, विनय, संयम, और सास-ससुर तथा पति के अनुसार कार्य करके सबके मन को प्रसन्न कर लिया।

समय बीत रहा था, सावित्री को सदैव चिंता रहती थी कि पति सत्यवान का मृत्युकाल निकट आ रहा है। समय बीतता गया और सत्यवान के मरने का दिन आ गया। सावित्री मृत्यु के दिन की गणना करके निश्चय कर रखा था। नारद के कथनानुसार आज ही सत्यवान को मरना था। उस समय सावित्री तीन दिनों से उपवास व्रत में रही। ससुर द्युमत्सेन को बहू के तीन दिन के उपवास व्रत को जानकर दुख हुआ। उन्होंने कहा–बहू! तीन दिनों का उपवास तो बहुत दुष्कर है। सावित्री ने कहा–पिता जी! आप चिंता न करें। मैं इसे निभा लूंगी। द्युमत्सेन ने सावित्री का समर्थन किया। सावित्री काष्ठ की तरह खड़ी रहती थी।

दोपहर के बाद का समय है। सत्यवान कुल्हाड़ी और टोकरी लेकर फल,

मूल और समिधा लेने के लिए वन में जाने के लिए निकला। सावित्री साथ जाना चाही, सत्यवान ने रोका कि तुम तीन दिन की भूखी हो, चलना कठिन होगा; परन्तु सावत्री ने कहा–मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी। उसने ससुर से भी आज्ञा ले ली। वे वन में गये। दोनों ने फल–फूल का संग्रह कर टोकरी भर ली। इसके बाद सत्यवान ने लकड़ी चीरना शुरू किया। कुछ समय में उसको पसीना आया और सिर में दर्द होने लगा। उसके शरीर में पीड़ा होने लगी। उसे खड़े होने का साहस नहीं रह गया। वह सावित्री की गोद में सिर रखकर अचेत हो गया।

तुरन्त यमराज स्वयं आ गये। सावित्री सत्यवान का सिर जमीन पर रखकर यमराज के सामने हाथ जोड़कर कांपते हुए खड़ी हो गयी और उसने पूछा–आप कौन हैं? यमराज ने कहा–मैं यम हूं। सत्यवान का समय पूरा हो गया है। इसके आत्मा को बांधकर मैं ले जाऊंगा। इसके बाद यमराज सत्यवान के आत्मा को बांधकर दक्षिण दिशा को ले चले। सावित्री भी यमराज के पीछे चल पड़ी।

यमराज–सावित्री! अब तू लौट जा, सत्यवान का दाह संस्कार कर। तू पति के ऋण से उऋण हो गयी है। पति के पीछे जहां तक जाना था तू जा चुकी है।

सावित्री–जहां पति जा रहे हैं वहां मुझे भी जाना चाहिए, यही सनातन धर्म है। गुरुभक्ति, पतिप्रेम, व्रतपालन तथा आपकी कृपा से मेरी गति कहीं रुक नहीं सकती। विवेकीजन कहते हैं कि सात पग साथ चलने से मैत्री हो जाती है। यही सिद्धान्त रखकर मैं आप से कुछ निवेदन करूंगी।

यमराज–सावित्री! तू लौट जा। मैं तेरी बातों से प्रसन्न हूं। तू मुझसे कोई वर मांग ले।

सावित्री–मेरे ससुर अंधे हैं, उनकी आंखों की ज्योति पूरी तरह लौट आये और वे साफ देखने लगें।

यमराज–सत्यवती! मैंने यह वर दिया। अब तू लौट जा।

सावित्री–सत्पुरुषों की संगत सुखद होती है, अतएव उनका सदा साथ करना चाहिए।

यमराज–सत्यवती! तेरी बात प्रिय है। सत्यवान के जीवन के अलावा तू कोई भी दूसरा वर मांग ले।

सावित्री–मेरे ससुर द्युमत्सेन का राज्य छिन गया है। उन्हें अपना राज्य पुनः निर्विघ्न मिल जाय।

यमराज–सत्यवती! मैंने यह वर भी दिया। अब तू लौट जा, जिससे तुम्हें व्यर्थ थकावट न हो।

सावित्री–सबसे वैर-रहित रहना, दयाभाव रखना, दान देना सनातन धर्म है। मनुष्य अल्पायु होता है। उसकी दुर्बलता तो प्रसिद्ध ही है। आप जैसे सत-पुरुष शरण में आये हुए शत्रु पर भी दया करते हैं।

यमराज–सत्यवती! तेरी बात प्रिय है। तू सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त कोई भी तीसरा वर मांग ले।

सावित्री–मेरे पिता अश्वपति पुत्र-हीन हैं। उन्हें सौ ऐसे औरस पुत्र प्राप्त हों जो उनकी कुल-परम्परा को चलाने वाले हों।

यमराज–मैंने यह तीसरा वर भी दिया। तेरे पिता के सौ पुत्र पैदा होंगे। अब तू लौट जा। तू बहुत दूर चली आयी है।

सावित्री–मैं अपने स्वामी के निकट हूं। इसलिए मेरे लिए यह जगह दूर नहीं है। मेरा मन तो और भी दूर तक जाना चाहता है। आप चलते-चलते मेरी बातें पुनः सुनें। मनुष्य को जितना सन्तों पर विश्वास होता है उतना अपने आप पर भी नहीं होता। इसलिए समझदार लोग सन्तों से अधिक प्रेम करते हैं। सौहार्द से विश्वास उत्पन्न होता है। सन्तों में दया भाव होता है, इसलिए उन पर अधिक विश्वास होता है।

यमराज–सावित्री! तेरी बात उत्तम है। तू सत्यवान के जीवन के अलावा कोई भी चौथा वर मांग ले।

सावित्री–मेरे और सत्यवान–दोनों के संबंध से सौ औरस पुत्र प्राप्त हों जो बल और पौरुष से सम्पन्न हों।

यमराज–मैंने यह चौथा वर भी दिया। अब तू लौट जा। तू बहुत दूर तक चली आयी है।

सावित्री–सत्पुरुष निरन्तर धर्मरत रहते हैं। वे कभी दुखी नहीं होते। सज्जन लोग सदैव सत्संग चाहते हैं। सन्तों से कभी भय नहीं होता। सन्तों की संगत से दुख कटता है। सन्तों की कृपा से अनर्थ दूर होता है।

यमराज–सावित्री! तेरी समझदारी की बातों से मेरे मन में तेरे प्रति भक्ति बढ़ती जा रही है। तू पांचवां कोई अनुपम वर मांग ले।

सावित्री–महाराज! आपने जो मुझे पुत्र-प्राप्ति का वर दिया है वह पति-पत्नी संयोग के बिना असम्भव है। इसलिए मैं अपने पति सत्यवान का जीवन दान चाहती हूं। मैं पति के बिना मरी हुई के तुल्य हूं। मैं पति के बिना कोई सुख नहीं चाहती, स्वर्ग भी नहीं चाहती। पति के बिना मैं धन-सम्पत्ति नहीं चाहती।

यहां तक कि मैं पति के बिना अपना जीवन नहीं चाहती। आप ही ने मुझे सौ पुत्र होने का वर दिया, और आप ही मेरे पति को अन्यत्र ले जा रहे हैं। अतएव मैं यही चाहती हूं कि मेरा पति जीवित हो जाय। इससे आपकी बात सत्य होगी।

यमराज–सावित्री! यह ले, तेरे पति को छोड़ दिया। तूने धर्मयुत वचनों से मुझे सन्तुष्ट कर दिया। शीलवती! तेरा पति सत्यवान नीरोग, सफल मनोरथ तथा तेरे द्वारा ले जाने योग्य है। तेरा पति सत्यवान चार सौ वर्षों तक जी कर धर्माचरण करेगा। और इसके द्वारा तेरे से सौ पुत्र पैदा होंगे। तेरे पिता अश्वपति द्वारा तेरी माता मालवी से सौ पुत्र पैदा होंगे और वे मालव नाम से विख्यात होंगे।

सत्यवान जग गया और उसने सावित्री से कहा–प्रिये! खेद है, मैं बहुत देर तक सो गया। तुमने मुझे जगा क्यों नहीं दिया? दोनों आश्रम पर आये। सत्यवान के पिता की आंखें ठीक हो गयी थीं और वह साफ देखने लग गये थे। उसी समय शाल्व देश की प्रजा के प्रतिनिधियों ने आकर द्युमत्सेन को बताया कि आपका शत्रु राजा तथा उसके बंधु-बांधव अपने ही मंत्री द्वारा मार डाले गये। हम आपको अपना राजा मानते हैं। आप चलकर अपना राज्य सम्हालें। इसके बाद राजा द्युमत्सेन अपने परिवार सहित अपनी राजधानी को चले गये। इस प्रकार सावित्री ने अपने आप को, माता-पिता को, सास-ससुर को तथा पति और उसके कुल को भारी संकट से बचा लिया और सबको सुखी-संपन्न बनाया (अध्याय -)।

मीमांसा

इस कहानी का आदर्श है सावित्री का उत्तम पातिव्रत्य। पुरानी सारी कहानियां प्रायः चमत्कारों से भरी रहती हैं जिनके प्रभाव से जनता अन्धविश्वासी और मूढ़ होती है। अश्वपति के तप से सावित्री देवी का आना, वर देना, यमराज का आना और वर देना, वर देने से सौ-सौ पुत्र पैदा होना, चार सौ वर्ष जीना, नारद का किसी की मौत का दिन बताना आदि सारी बातें काल्पनिक हैं। ऐसा होता नहीं है। किसी के शाप देने से न कोई मर जाता है और न वर देने से मरा हुआ जी जाता है। जीना-मरना स्वाभाविक होते रहते हैं।

इस कहानी का सार है सावित्री का एकनिष्ठ पातिव्रत्य जो चांद-सितारे की तरह ज्योर्तिमय है। नारियां इससे सीख लें; किंतु पुरुष भी पत्नीव्रती हों।

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"जैसा श्री सुकथनकर ने लिखा है,

महाभारत का यह असीम अनुग्रह मानना चाहिए कि उन्होंने नल–उपाख्यान और सावित्री–उपाख्यान इन दो तरल साहित्यिक अंशों को अपने महान ग्रंथ में स्थान देने के लिए मूल कथा के प्रवाह को कुछ समय के लिए रोक लिया, नहीं तो ये दोनों विशिष्ट कृतियां आज न जाने कहां होतीं। नल–उपाख्यान जैसी साहित्य की सरल और वेगवती रचना विश्व–साहित्य में कम ही हैं और सावित्री उपाख्यान तो भारत के घर–घर की वस्तु है।''

''सावित्री की कथा में नारद जी के संवाद के बाईस श्लोक गुप्तकाल में जोड़े हुए ज्ञात होते हैं। ऊपर के श्लोक में साधयिष्यामहे (हम जायंगे) पद इसकी ओर संकेत करता है। 'साध' धातु का इस अर्थ में प्रयोग ठेठ गुप्तकाल की भाषा में आता है। कुमारगुप्त के समय के (पांचवीं शती) चतुर्भाणी नामक ग्रंथ में अनेक बार इस धातु का इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है। आरण्यक पर्व के ऊपर लिखित श्लोक से मिलता हुआ प्रयोग रघुवंश में कालिदास ने भी किया है, *'साधयाम्यहमविघ्नमस्तुते।'* इन श्लोकों को यदि निकाल दिया जाय तो , की संगति , श्लोक से जुड़ जाती है।''

. यक्ष प्रश्न और युधिष्ठिर उत्तर

सावित्री–सत्यवान की कथा के बाद कर्ण के कुण्डल और कवच को इंद्र ब्राह्मण का रूप बनाकर मांगने आने वाला है। इसलिए सूर्य ने कर्ण के सोते समय उनको सपने में सावधान किया है कि तुम ब्राह्मण–वेषधारी इंद्र को उसके मांगने पर अपने कुण्डल और कवच नहीं देना। किन्तु कर्ण ने कहा–ब्राह्मण को दान देने की मेरी प्रतिज्ञा है। मैं उसको नहीं मेटूंगा। इसी के साथ कर्ण की उत्पत्ति आदि का विस्तार से वर्णन है जो आदि पर्व में आ चुका है और पर्व के क्रम में छब्बीस ( )वें सन्दर्भ में लिखा जा चुका है (अध्याय –)।

वन पर्व का अन्तिम सन्दर्भ है यक्ष प्रश्न। पांचों पांडव प्यासे थे। युधिष्ठिर ने नकुल को आज्ञा दी कि तुम जाकर किसी जलाशय से तरकशों में पानी भर लाओ। नकुल एक सरोवर के पास गये। पानी स्वच्छ था। प्यासे थे, पीने की इच्छा हुई। इतने में उनके कानों में आवाज सुनायी दी–तात! पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, उसके बाद पानी पीओ और ले भी जाओ। परन्तु नकुल बहुत

. **भारत सावित्री, पष्ठ ।**
. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**